भड़ामसिंह शर्मा

हास्य पूर्ण उपन्यास

हास्यरसके प्रमुख
लेखक
श्रीयुक्त जी० पी० श्रीवास्तव

प्रकाशक
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस।

पञ्चम संस्करण] १९५१ [मूल्य १।।)

प्रकाशक—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस।

शाखाएँ—
२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता।
बाँकीपुर, पटना।

मुद्रक—
कृष्णगोपाल केडिया
वणिक प्रेस
साक्षीविनायक, बनारस।

दो शब्द

हास्यरस भी साहित्यका एक अंग है। हिन्दी-साहित्यमें अभी इसकी तरफ बहुत ही कम लोगोंने ध्यान दिया है। बहुतसे साहित्यिकोंका तो यह ख्याल है कि "हास्यरस" साहित्यका एक न्यून अंग है। परन्तु अब धीरे-धीरे लोगोंके विचारमें परिवर्तन हो रहा है तथा अब इस बातको सब लोग समझने लगे हैं कि इसकी भी पूर्ति अवश्य होनी चाहिये।

हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें तो अभी इस विषयके दो ही एक लेखक हैं जिनकी लेखनीसे इस रसका मजा पाठकोंको कभी-कभी मिल जाता है। इस विषयपर कलम उठानेके लिये तो ईश्वर-प्रदत्त और स्वाभाविक प्रतिभाकी आवश्यकता है, इन्हीं प्रतिभावान साहित्य-शिल्पियोंमें श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तवजी भी एक हैं। जिनकी लेखनीका मजा हिन्दी-भाषा भाषियोंने बड़े आनन्दके साथ चखा है। परन्तु आपकी पुस्तकोंका यथेष्ठ प्रचार न होना हिन्दीके लिये बड़े दुर्भाग्यकी बात थी। उसका कारण यह था कि श्रीवास्तवजी अपनी पुस्तकोंके स्वयं प्रकाशक थे। आप लेखकके साथ ही साथ वकालत भी कर रहे हैं। आपको अपने इन्हीं कामोंसे फुरसत नहीं, फिर प्रकाशन जैसे झड़ंगेके कामको सम्भालना और पुस्तकोंका प्रचार करना आप जैसे बहुधन्धीके लिये बड़ा कठिन था। यही कारण है कि उधर बहुत दिनोंसे हमलोग आपकी रसभरी, हास्य-मयी और विनोदपूर्ण चुभती हुई मजेदार रचनाको न चख सके।

अब आपकी पुस्तकोंके प्रकाशनका अधिकार हिन्दी-पुस्तक एजेन्सीने लिया है। अतएव अब आपकी सभी पुस्तकें शीघ्र ही अपने उदार पाठकोंकी भेंटको जायँगी। आशा है कि प्रेमी पाठक हमारे इस कार्यमें सहायक बनेंगे।

भवदीय—

—प्रकाशक

श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव हिन्दी-साहित्यके उन कतिपय लेखकोंमेंसे एक हैं, जिनपर साहित्यको उचित गर्व हो सकता है। आपने साहित्यमें एक नया ही अध्याय आरम्भ किया है। हास्य-रसपर आपकी लेखन-शैली निराली ही छटा दिखाती है।

बहुतसे सम्पादक तथा लेखक महानुभाव 'हास्य' को साहित्यका कोई आवश्यक अंग ही नहीं समझते हैं उनके विचारमें हँसी-दिल्लगी चरित्र-भ्रष्टताके ही लिये है। आप संसारकी किसी भी उन्नत भाषाके साहित्यका अनुशीलन कीजिये, आपको उसमें हास्यकी छठा अवश्य ही नजर आयेगी। जिस साहित्यमें हास्य नहीं, वह शुष्क और नीरस साहित्य कभी आदर्श भाषा और भावपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। हास्य साहित्यका भूषण है। मनोरंजनके साथ ही साथ—जो कि प्रत्येक सुख तथा शान्तिमय जीवनके लिये एक अनिवार्य्य साधन है—हास्यके द्वारा हर प्रकार-की शिक्षा हृदयग्राही ढंगसे दी जा सकती है।

हिन्दी-साहित्य बड़ी शीघ्रताके साथ उन्नति कर रहा है। कई दूसरे आवश्यक विषयोंके ग्रन्थोंके सिवाय हास्य-रसके अभावके पूर्त्यर्थ भी कई सुलेखक प्रयत्न कर रहे हैं। उन कतिपय उत्साही और प्रभावशाली लेखकोंमें श्रीयुत् जी० पी० श्रीवास्तवकी हास्यमयी आख्यायिकाओंने बड़ा नाम पाया है। आपकी कल्पनामें, भाषामें, वर्णन और लेखनीमें जीवन है, माधुर्य्य है और प्रभाव है। आपके लिखनेका एक विशेष-निराला-स्टाइल है। यह कोई आव-श्यक बात नहीं है कि सभी लेखक एक-सी भाषा, एक-सी शैली और एक सी ही भावनाएँ रखें। रुचिभिन्नताकी अवस्थामें प्रत्येक दशामें, विभिन्नता ही प्रभावमयी हो सकती है और हुआ भी करती है। यह दूसरी बात है कि कोई विशेष व्यक्ति किसी विशेष कारणसे, किसीकी विशेष शैलीको ही नापसन्द करता हो, किन्तु इससे इस बातकी उपयोगिता, आवश्यकता और सामयिकता कदापि नष्ट नहीं हो जाती है।

श्रीवास्तवजीकी उपजका क्या कहना! आपकी प्रत्येक पुस्तक आपकी अनूठी 'उपज' का उज्ज्वल स्वरूप है। हिन्दी अपने इस 'रसिया' सपूतपर उचित गर्व करती है। माता अपने 'शेख' पर नाजां हैं।

लोग कहते है कि 'श्रीयुत् भड़ामसिंहजी शर्मा उपदेशक' का चरित्र लिखते हुए कुछ अधिक अत्युक्तिसे काम लिया

गया है। 'नवजीवन' में प्रकाशित होते समय हमारा भी कुछ ऐसा ही ख्याल था। किन्तु अभी थोड़े ही दिन हुए कि हमें नखशिखमें बिलकुल ठीक 'महाशय भड़ामसिंहजी' ही जैसे एक अर्द्धाङ्गिनी सहित 'उपदेशक' महानुभावके साथ कुछ दिन सहवासका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हमने उनमें और 'महाशय भड़ामसिंह' में बाल बराबर भी कमी नहीं देखी, वरन् कुछ विशेषताएँ ही थीं और हमें विश्वास है कि जो कोई भी सज्जन इन ट्रैवलिंग उपदेशकजीको देखेंगे और उनसे बातें करेंगे तो वह भी उन्हें फौरन ही भड़ामसिंह शर्माजी ही पुकार उठेंगे। इन महानुभावोंसे परिचय प्राप्त करके तो हम समझे थे कि शायद श्रीवास्तवजीने कहीं इन्हीं सज्जनका चरित्र तो अंकित नहीं कर दिया है।

वास्तवमें ऐसे अन्धाधुन्ध उपदेशकोंकी यह कल्पना सर्वथा निःसार कदापि नहीं है। शैली जो ग्रहण की गई है वह लेखककी इच्छा और रुचिकी बात है। उसपर एतराज करना दैवी स्फूर्तिका निरादर करना और उसके मर्मसे अनभिज्ञता प्रकट करना।

श्रीवास्तवजीकी कई पुस्तकें अबतक प्रकाशित हो चुकी हैं। आप हास्यरसके अपने ढंगके सिद्धहस्त और अद्वितीय लेखक हैं। आपसे अभी साहित्यका बहुत कुछ उपकार होना है। सुसमीप भविष्यमें आपकी प्रभावशालिनी, कल्पनापूर्ण और हास्य-प्रसू लेखनीसे हिन्दी साहित्यमें बहुत

कुछ रत्न चमकेंगे, हमारे साहित्यके एक बड़े अभावकी पूर्ति होगी, आपको सफलता मिलेगी एतदर्थ आपके मित्रोंको प्रसन्नता होगी।

ईश्वर आपको अधिकाधिक सफलता प्रदान करें, यही हार्दिक कामना है।

विनीत—

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा ७५
मार्च १९१९

द्वारिका प्रसाद सेवक
सरस्वती-सदन, इन्दौर।

———

आवश्यक निवेदन

मैं किसी धर्मका न पक्षपाती हूं और न द्रोही। हर किस्मके झगड़ोंसे मैं दूर रहता हूँ। बुराइयोंका सुधार अलबत्ता चाहता हूँ। चाहे वे जिस रङ्गमें हों। इसी नीयतसे 'नवजीवन' के सम्पादक श्रीयुत द्वारिका प्रसाद सेवकके लेख माँगनेपर मैंने 'भड़ामसिंह' लिखा। उनका पत्र आर्यसमाजी होनेके कारण मुझे 'उपदेशक' का विषय उसके लिये ठीक मालूम हुआ, क्योंकि और पत्रोंमें, मुमकिन था, भ्रमसे यह आक्षेप समझा जाता। मैंने इसे १९१५-१९१६ में लिखा और यह लगभग दो सालतक लगातार इन्दौरके 'नवजीवन' में क्रमशः प्रकाशित होता रहा। उसके बाद इसमेंका 'बेदुमका लेख' लखनऊके 'कैनिङ्ग कालिज मैगजीन' काशीकी 'गल्प-माला' और मेरठकी 'ललिता' नामक पत्रिकामें भी प्रकाशित हुआ। इसके लिखते हुए मैं कुछ साहित्यिक झगड़ोंमें भी उलझ गया हूँ। शेखीकी नीयतसे नहीं, बल्कि अपने ऊपर किये हुए आक्षेपोंका जवाब देनेकी गरजसे; क्योंकि शुरूमें हिन्दी-साहित्यिक क्षेत्रमें प्रवेश करनेमें जो जो कठिनाइयाँ मुझे उठानी पड़ी हैं, वह शायद ही किसी हिन्दीके लेखकने उठाई होगी।

गोंडा
१५·३·१९२० } जी० पी० श्रीवास्तव

भड़ामासिंह शर्मा

"हाफ़िज़ा गर वस्ल ख्वाही सुलह कुन बा ख़ासो आम।
वा मुसल्मा अल्ला अल्ला वा बरहमन राम राम॥"

वह शादी ग़लत है!

दो आदमी यह सुनते ही चौंक पड़े और जिधरसे यह आवाज़ आई थी, उधर ग़ौरसे देखने लगे। एक आदमीका ढांचा एक कोनेमें सिकुड़ा-सिकुड़ाया पुलिन्देकी सूरतमें कुछ गड़बड़सा दिखाई पड़ा। रोशनी इस कम्पार्टमेंटमें ठीक नहीं पड़ती थी। एक तो यों ही अंधियाली थी। उसपर औंधी सूरत। मुँहकी जगह खाली चाँद घुटी खोपड़ी नज़र आती थी। इसलिये इनकी शकलकी हुलिया लिखना अभी ज़रा टेढ़ी खीर है। दोनों इधर देख ही रहे थे कि सामनेकी बेंचपरसे तीन आदमी एकबारगी बोल उठे।

अरे भाई ! श्रीराम ! पत्ता देते हो या नहीं ?

श्रीराम—यार ! चाँद खूब घुटी है ।

एक—तो फिर ? तुम्हारी राय है कि ताश बन्द कर दिया जाय ?

श्रीराम—दोस्त, मजा तो इसीमें है ।

दूसरा—भाई साहबको तो देखो, किस तरहसे घूर रहे हैं। अरे भाई, आँखें क्या एकदम नज़र कर दीं ?

भाई साहब—तुमने फिक़रा तो सुना ही नहीं। नहीं तो दूबे, तुम वहाँ पहुंचते ।

दूबे—फिक़रा कैसा ?

भाई साहब—अच्छा, लोगो ! बताओ, इसके क्या मानी हैं कि—वह शादी ग़लत है ।

दूबे—शादी ग़लत है ! शादी भी क्या कोई अलजबराका हिसाब है ? वाह ख़ूब रहा यह तो ।

एक—इसके कहनेवाले कौन हैं, ज़रा उनकी शकल तो देखूँ ।

श्रीराम—शकल तो नहीं, एक घुटी हुई चाँद है ।

गाड़ीकी घड़घड़ाहट अब और तेज़ हो गयी। आपसकी बातें जिसकी वजहसे ज़रा मुशकिलसे सुनाई देने लगीं। ताश अलग रख दिया गया और फिक़रेबाजी शुरू हो गई। एक भले आदमी जो अबतक ख़ाली त्यौरियाँ ही रह-रहकर बदल रहे थे, पिनपिनाकर उठ बैठे और इस छोटीसी

मस्तानी जमाअतपर अपनी बेतुकी जबानकी लगाम छोड़ दी।

भले आदमी—क्यों, आप ही लोग दुनियामें नव-जवान हैं?

भाई साहब—क्यों, ख़ैर तो है? क्या नवजवानोंसे उकता गये आप?

दूबे—कहिये तो जवानी ग़ारत कर दें आपके लिये।

श्रीराम—हाँ सारी नवजवानी आपपर न्यौछावर कर दूँ।

भले आदमी—मालूम होता है, आप लोगोंका मुख्य पेशा दिल्लगीबाज़ी है।

भाई साहब—जी नहीं, हम लोग सिर्फ गदहोंको उल्लू बना देते हैं और कुछ नहीं। इसीको आप चाहे पेशा कहिये या जो समझमें आये।

दूबे—फिर वह खुद उड़ने लगता है।

श्रीराम—मगर अपनी किस्मतसे मजबूर रहता है। उसकी अक़्लकी आँखोंपर बेवकूफीका परदा दिनभर पड़ा रहता है।

भले आदमी—तुम लोग रातभर नाकमें दम करते रहे। ज़रा देरके लिये किसी वक्त तो आँख नहीं लगने दी। हरदम हँसी-ठट्ठा, गुलगपाड़ा। कभी इसको बेवकूफ कहा, कभी उसको कहा; यही भलमनसाहत है?

भाई साहब—माफ कीजियेगा। हमें नहीं मालूम था कि रेलपर सोनेके लिये आप सवार हुए थे।

दूबे—अरे भाई, रेलगाड़ी सफरके लिये है या सोनेके लिये ?

श्रीराम—तुम जानते नहीं हो। इस बरसातने हजारोंके वारे-न्यारे कर दिये। लाखों मकान गिर पड़े। इसकी वजहसे रातको कहीं सोनेका ठिकाना नहीं। क्योंकि बाहर पानी और भीतर डरावनी छत, जो न जाने किस वक्त गिरे। ऐसी हालतमें बहुतोंने रातको रेलपर सोनेकी तद्वीर सोची। शाम हुई दो आनेका टिकट लिया। गाड़ीमें घुसे, लम्बी तान दी। रात अगर खैरियतसे गुजर गई तो वाह! वाह! और पकड़े गये तो ईश्वर मालिक है। फिर भी जान तो बची रहेगी।

भाई साहब—यार, पतेकी कही। अब तो भलमनसाहत इसी-में रह गई कि एक आदमी पूरी बेंचपर लम्बा लेटा रहे और चार आदमी रातभर कोनेमें खड़े रहें।"

दूबे—और अगर कोई बेतुका मिल गया तो उसने सोनेवाले-की टाँग पकड़के अलग की और खुद दनसे बैठ गया और नहीं तो खोपड़ीपर ही आसन जमा दिया।

श्रीराम—तब भी तो भलमनसाहत ज्योंकी त्यों कायम रहेगी।

दूबे—हमने सुना है कि विलायतवाले आजकल इस कोशिशमें

हैं। कि जिस तरहसे तारसे खबर भेजी जाती है उसी तरहसे तारपर आदमी भी भेजा जाया करे।

श्रीराम—वाहरे विलायतवाले! जितनी बातें ईजाद करते हैं, सब हमीं लोगोंके आरामके लिए।

भाई साहब—क्या करते, जब उन्होंने देखा कि हिन्दुस्तानी आदमी सिवाय सोनेके और हाथपर हाथ धरे बैठे हुए ऊँघनेके किसी और तरकीबसे दिन काट ही नहीं सकते तो इनके सफरकी तकलीफोंको दूर करनेके लिये तारघरसे या डाकखानेसे मुसाफिर रवाना करनेकी फिकिर कर रहे हैं।

भले आदमी—आरामसे सो करके न दिन काटें तो क्या तुम्हारी तरह बेहूदी बातोंमें दिन काटें?

दूबे—हट जाओ भाई। श्रीराम, आपको सोने दो, आप रेलके जमादार हैं। रात रोज गाड़ी ही पर गुजरती है, इसलिये गाड़ी छोड़कर सोने कहाँ जायें?

भले आदमी—मैं जनाब कोई रेलका ऐसा-वैसा नौकर नहीं हूं, मैं सम्पादक हूँ, समझ रखिये।

श्रीराम—अख़्ख़ाह! तब तो आप खूब मिले।

भाई साहब—आपने नाहक इतनी जल्दी कर दी। आपकी बारी तो आती ही क़भी न कभी।

सम्पादक—तुम लोग बाज नहीं आते हो, दिल्लगी करते ही

चले जाते हो। मेरी समझमें नहीं आता कि हंसी-मज़ाकमें रक्खा क्या है, इससे फ़ायदा क्या ?

श्रीराम—जीजिये, फ़ायदा कुछ है ही नहीं, रञ्ज नहीं फटकने पाता। बेवकूफ लोग बन जाते हैं। हमारा दिल खुश होता है और तबीयत हरी हो जाती है।

सम्पादक—किसीको बनानेसे फायदा ?

भाई साहब—अगर कोई चीज़ बिगड़ जाये तो उसे बनाना नहीं चाहिए ? गिरते हुएको संभालना नहीं चाहिये ?

सम्पादक—हाँ, चाहिये, मगर शिक्षा देकर न कि उनकी हँसी उड़ाकर।

भाई साहब—माफ कीजियेगा। सम्पादक होना सहल है, मगर सम्पादक होनेकी योग्यता रखना मुशकिल है। आप लोग यही जानते हैं कि सुधारका तरीका बस शिक्षा ही है। बच्चा हो तो शिक्षा दो औरत हो तो शिक्षा, नौजवान हो तो शिक्षा; गरज़ यह कि हर एकको शिक्षा दो, बस एक दवा हाथ लग गई है। मगर अफसोस यह है कि न तो दवाकी खुराक मालूम है, न उसके देनेका वक्त मालूम है और न उसकी तरकीब मालूम है, जिसकी वजहसे असर एकदम उलटा होता है।

सम्पादक—तुम्हारी समझ उलटी है। आजकल हास्यकी ऐसी दुर्गन्धयुक्त हवा चली है, जिसने बहुतोंके दिमाग फेर दिये हैं। कुछ लोग तो यहाँतक कहने लगे हैं कि यह भी साहित्यका

एक अंग है और इसमें भी शिक्षा होती है। अगर यह गलत ख्याल दूर नहीं किया गया तो बहुत जल्द लोग गाली-गलौजको भी साहित्य कहेंगे, क्यों न भाषाकी दुर्दशा हो? मैं हमेशा अपने सम्पादकीय-विचारमें यही दिखाता हूँ कि हास्यमें सिवाय अश्लीलता, बेहूदापनके और कुछ नहीं रहता। जिसके पढ़ते-पढ़ते पाठकोंके चित्तपर बुरा असर पड़ता है। उनकी रुचि गन्दी हो जाती है। उनकी गम्भीरता नष्ट हो जाती है। उनकी तबीयतमें ओछापन आ जाता है। समाज बदनाम हो जाता है।

श्रीराम—यह आप अपना तजुर्बा कह रहे हैं या किसी-का सुना हुआ?

दूबे—किसीका भी तजुर्बा सही सवाल अब तो यह है कि हास्यकी धारा बह चली। उसको रोका किस तरह जाये और कड़ी समालोचनाओंके लिए उसको पढ़ना जरूरी है और जब पढ़ते हैं तो डरते हैं कि कहीं खुद न बहक जाएँ और हाथसे बेहाथ हो जाएँ।

भाई साहब—हास्य पढ़ते वक्त अश्लीलता आप कहाँ पाते हैं? हास्यमें? ऐसा तो नहीं होता कि हँसीकी बातें आपके दिमाग-में पहुँचकर आपकी गन्दी समझसे मिलकर गन्दी हो जाती हों? क्योंकि एक ही मछली तमाम तालाबको गन्दा करती है और यह भी सुना होगा आपने कि "जिनकी रही भावना जैसी, देखी प्रभु मूरत तिन तैसी।"

श्रीराम—साफ क्यों नहीं कहते कि बिल्लीको ख्वाबमें भी छिछड़े ही नजर आते हैं।

दूबे—या यह कि बन्दरको अदरक हमेशा ही बुरा मालूम होता है।

श्रीराम—कुछ नहीं साहब। जब कभी हास्य पढ़ना हो तो पहले आप अपनी नाक और समझको फिनायलसे खूब रगड़कर साफ कर लिया कीजिये। सब शिकायत दूर हो जायगी।

दूबे—हाँ हाँ, मुमकिन है, अपनी नाकमें कुछ गन्दगी हो, जिसकी वजहसे और चीजें गन्दी मालूम होती हों।

श्रीराम—बेहतर तो यह होगा कि ईश्वरके पास आप एक अर्जी भेजिये या खुद लेकर जाइये, या अबतक एक सम्पादकीय टिप्पणी ही निकाल दीजिये कि ईश्वरके कारखानेमें आदमियोंके मुँहके साँचोंमें लम्बे-लम्बे थूथन बना दिये जायें, ताकि हंसनेका कुल बखेड़ा जड़से साफ हो जाये। "न रहेगा बाँस, न बाजेगी बांसुरी।" अक्लमें तो कभी-कभी क्या, बल्कि ज्यादातर उनका मुकाबिला करते ही हैं, अब सूरतमें भी मिलाप रहे।

सम्पादक—तुम लोगोंकी जिन्दगी हमेशा बेहूदापन हीमें गुजरेगी। इस हँसी-मजाकके पीछे न तो तुम खुद कुछ सीख सकते हो और न किसीको कुछ सिखा ही सकते हो।

श्रीराम—जी हाँ, बेवकूफी और बौड़मपन नहीं सीख सकते यही तो अफसोस है।

भाई साहब—जनाब, फिर आप यही कहते हैं कि हास्यमें शिक्षा ही नहीं। मैं बताता हूं, सुनिये, फर्ज कीजिये कि कोई स्कूल-मास्टर, स्टेशन-मास्टर, उपदेशक, डाक्टर या वैद्य, कोई हो, जिसमें कुछ खराबियाँ आ जानेसे उनको सुधारनेकी जरूरत है। अगर हम उसको खाली शिक्षा, जोकि हमेशा कड़ुई होती है दें कि 'भाईयो, तुम गलती करते हो, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये तुम ऐसा करो, वैसा करो, तो इसका जवाब बहुत यहीं देंगे कि खफ्ती है, बकने दो। हम कुछ करें, इसके बापका क्या ? अगर एक फर्जी चरित्र खींचकर जिसमें उनकी खराबियाँ बेवकूफीकी सूरतमें दिखाकर उनका खाका उड़ाया जाये तो जब वे लोग इसको पढ़ेंगे तो उन बेवकूफियोंपर जरूर हँसेंगे और जब उन्हें हँसी आयगी तो दिलमें उस चरित्रको यही कहेंगे कि यह कम्बख्त बड़ा उल्लू है। देखो, कैसी बेवकूफी करता है। जब उनके दिमागमें यह बात आ गई तो इसीके साथ यह भी जरूर आयेगा कि जिस तरहसे हम खुद इस चरित्रको बेवकूफ कहते हैं और हँसते हैं, उसी तरहसे अगर ऐसी बातें हममें पाई जायेंगी तो हम भी बुरी तरह हँसे जायँगे, और हँसे जानेका ख्याल सैकड़ों शिक्षाओंसे जबरदस्त होता है। चलिये, बातकी बात बन गई, पढ़नेवालोंका दिल खुश हुआ, चार घड़ी जरा चहल-पहल रही, वक्त भी मजेमें कटा। तबियत ताजी हो गयी और इस तरहसे दूसरे काम करनेमें मन लगा और क्या लीजियेगा। 'न सांप मरा न लाठी टूटी।' हाँ, जो कुदरती निपोड़संख हैं उनकी बात और है।

इतनेमें एक बड़ासा स्टेशन आया। सम्पादकजी भुन-भुनाते हुए उतर गये और कुली बुलाकर असबाब उतरवाने लगे। असबाबकी जब बाहर जाँच हुई, तब सम्पादकजीको पता लगा कि एक बड़ा गट्ठर गायब है, बड़ी देरतक ढूँढ़-ढांढ़ हुई, गाड़ी छूटनेका वक्त भी आ गया, मगर गट्ठर न मिला। आखिर जब सम्पादकजी बहुत परेशान हुए तो श्रीरामने कहा:—

अजी साहब, वह क्या आखिरवाले कम्पार्टमैण्टके कोनेमें आपका गट्ठर रखा हुआ है, नाहक आप इतने परेशान हुए।

यह इशारा पाते ही सम्पादकजी दनसे कूद गये। एक तो बेचारे योंही कम दृष्टिवाले दूसरे उजालेसे अन्धेरेमें जानेसे आँखें चौंधियाँ गईं। तीसरे जल्दीबाजी, चौथे घबड़ाहट कुछ सूझ न पड़ा। झटसे दरवाजा खोलकर कोनेमें सोनेवाले गट्ठरनुमा आदमीको झटसे उठा कर बाहर ले चले। वह उनकी गोदमें बड़े जोरसे चौंका। सम्पादकजी ऐसे घबड़ाये कि उसको लिये गाड़ीपर से प्लेटफार्मपर अररररर धड़ामसे गिरे और दोनों आपसमें गुथे हुए पीपेकी तरह दूरतक लुढ़कते चले गये।

लुढ़कना एक बारगी बन्द हो गया और और दनसे पुलिन्देके दो हिस्से हो गये। कुछ देर दोनों अलग-अलग पड़े रहे। फिर दोनों उठे और दनादन गाड़ीमें घुस आये। सम्पादकजी श्रीरामसे बदला लेने आये और घुटी हुई चाँद सम्पादकजीके ऊपर अपना गुस्सा उतारने आई। दोनों आग हो रहे थे। एक इसलिये कि हमको सोतेमें जबरदस्ती उठाकर गाड़ीपरसे नीचे क्यों फेंक
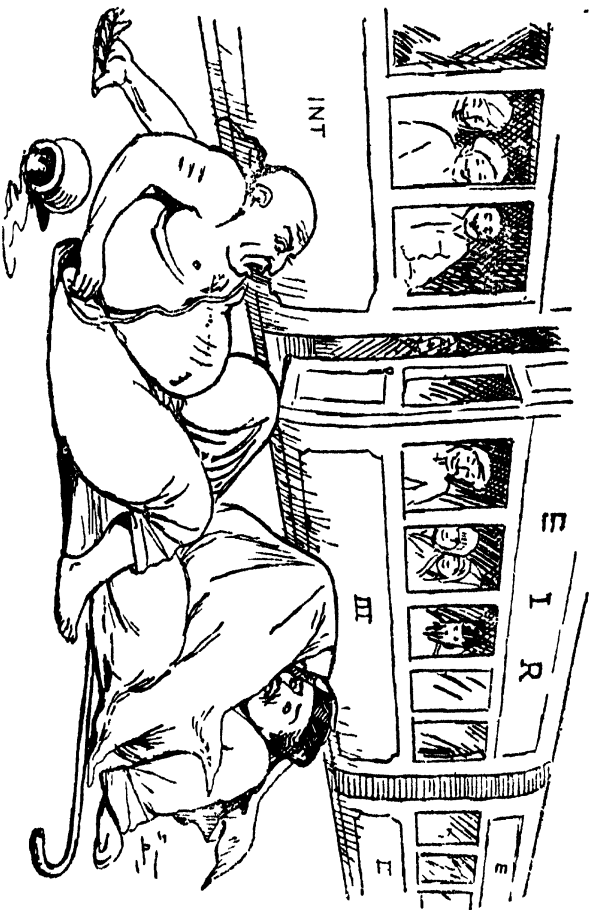
अररररर धड़ामसे गिरे और दोनों आपसमें गुथे हुए पीपेकी तरह कुछ दूरतक लुढ़कते हुए चले गये।

दिया ? हमारे साथ ऐसा बर्ताव करनेका किसीको क्या हक था ?

भाई साहब—राम ! राम ! ऐसा भी कोई करता है ? उठाना ही था तो आदमियतके साथ उठाते। कहिये, वेचारा बड़ा सीधा है। दूसरा होता तो इस वक्त खून हो जाता।

दूबे—कोई मेहरा होगा, जो दब गया। इस तरह इस किस्मके जो दो-एक ताबड़तोड़ फिक़रे हुए तो सम्पादकजी श्रीरामतक पहुँचने भी नहीं पाये कि बीच हीमें घुटी हुई चाँदसे भिड़ गये। फिर तो बुरी तरह उलझे। मारपीटकी जगहपर कानूनी बहस छिड़ गई ! हकका झगड़ा पेश हो गया। भारतमाताकी दोनों तरफ बार बार पुकार होने लगी। एकने जिरहमें अपनेको सम्पादक बताया, दूसरा अपने आप उगल बैठा कि हम उपदेशक हैं। दोनों पल्ले बराबर। किस्मतकी भारी गाड़ी भी किसी इन्तजारमें देरतक खड़ी रही। मौका अच्छा मिला, खूब लेक्चरबाजी होने लगी ! एक बहककर दनसे साहित्यके विषयपर आ गया, दूसरा कूदकर धर्मपर आ गिरा ! सम्पादकजीने अन्तमें यह नतीजा निकाला कि तुम्हें बहुत जल्द हमारे पत्रका ग्राहक हो जाना चाहिये और उपदेशक महाराजने इस बातपर खतम किया कि तुमको तुरन्त हमारे द्वारा समाजका रजिस्टर्ड मेम्बर हो जाना चाहिये। शाबाश ! दोनों खूब निबटे। अच्छा फैसला किया। था भी इसीका वक्त। इञ्जनने सीटी दी।. सम्पादकजी उतरे ! जैसे ही गाड़ी चली, वैसे ही न जाने श्रीरामने कहाँसे गट्ठर निकालकर खिड़कीसे बाहर

सम्पादकजीकी तरफ़ फेंक दिया। सम्पादकजीने वहींसे चिल्लाकर कहा कि घबड़ाओ नहीं, इसी अङ्कमें इस दफे तुम लोगोंके चरित्रोंकी कड़ी समालोचनाएँ टाइटिल पेजहीपर निकालूँगा। याद रखना।

श्रीराम—अजी उपदेशक महाराज, इधर आइये, ज़रा रोशनीमें। कुछ हम लोगोंके उद्धारकी सूरत भी निकालिये।

दूबे—ठहर जाओ, ज़रा खोपड़ी सहला लेने दो।

———

दूसरा परिच्छेद

मज़हब नहीं सिखाता आपसमें बैर रखना।
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा॥

उपदेशकजी तड़ाक-फड़ाक इस कम्पार्टमेण्टमें कूद आये! रोशनी पड़ते ही इनके चेहरेका रङ्ग खुला और फिर तो इनके ढांचेकी पूरी हुलिया भी साफ हो चली। इस वक्त खोपड़ीपर चक्करदार पगड़ी थी, जिसका Diameter दो फीटसे कुछ ज्यादा ही था। शुरू शुरूमें कपड़ेका रंग जरूर सफेद रहा होगा। मगर इस वक़्का रंग—था कोई न कोई जरूर—बताना मुश्किल था। इसके नीचे चपटासा गोल काला चेहरा अपनी चिमधीं आंखोंसे घोंसलेमें बैठी हुई बुलबुलकी तरह दबका हुआ झाँक रहा था। सूरत गो बहुत मुनहनी और छोटी थी तो इसपर शीतला देवीने भूगोलके नदी-नाले, पहाड़-खाड़ी वगैरहके नक्शे बहुत ही इतमिनानके साथ बनाये थे। नाक तो योंही कुदरती बैठो थी, मगर चेचककी काटछांटमें इसकी नोक भी बहुत कुछ ग़ायब हो गई थी। सिर्फ़ कुछ निशानी बाक़ी रह गई थी, वह भी लिक्षाही बेगकी टूटी-फूटी कब्रकी तरह बदनपर खुले गलेका काले रंगका चुस्त कोट पीछे कमरतक और आगे ठोढ़ीके ऊपर ही तक।

नीचे लम्बी धोती ढोली ढीली चुनटदार। मगर रंग गड़बड़। क्योंकि अगर खाकी कहें तो झूठ बोलें और मैला कहें तो शायद दिल दुखानेवाली बात हो जाय। पैरोंमें लाल मोजा, जो घूम-घुमाकर गांठपर पाजेबकी तरह अटका हुआ था। मगर अन्दरकी हालत पैर जाने या जूता। उमर न कम, न ज्यादा। कद ठिंगना। हाथमें बांसके बड़े मोटे सरतोड़खां शोभायमान थे।

भाई साहब—आइये, आइये! उपदेशकजी! मालूम होता है कि बिना प्रचार किये आप मानेंगे ही नहीं?

श्रीराम—अरे यार, अभी तो अचार निकाला है। मलहम पट्टी कर लें तो प्रचारकी सूझे।

दूबे—क्या ज़रा ज़रा-सी बातें लिये फिरते हो? अगर इन बातोंपर ये ग़ौर करने लगें तो बस इनका काम चल चुका।

उपदेशक—जी हां, इसमें तो जानतक जाती है।

दूबे—और यों वो हाथ पैर सर रोज़ही फूटते हैं।

श्रीराम—टूटना फूटना क्या? चलन चाहिये? बात-बातपर नाक कटे, तब बात है।

उपदेशकजी ज़बान खोलते ही व्याख्यानके सिलसिलेमें आ पड़े। फिर तो पंवारा शुरू हो गया। विविध मतोंको खण्डन करती हुई ओछी नदी बह चली। अब कहाँ रुकने वाली! और यह मस्तानी जमाअत फिर मज़ेमें ताश खेलने

लगी। जब ज़रा मामला धीमा पड़ने लगता था तो थोड़ीसी बीच बीचमें फूंक भर दी जाती थी। उपदेशकजी फिर ज्योंके त्यों। चाहे कोई सुने या न सुने, किसी पर इसका असर उलटा पड़ता हो, या बकनेसे चुप रहना बहुत बेहतर हो, या जहां खण्डन-मण्डनका ज़िक्र करनेसे, सिवाय फूट, विग्रह, थुक्कम-फज़ीता, जूती-पैज़ारके और कोई भी किसी क़िस्मका नतीजा निकलता न हो वह सब इनकी बलासे। क्या परवाह इन बातोंकी। इन्हें तो अपना उल्टा राग गानेसे मतलब। चाहे समाज इनकी वजहसे बकी, लड़ाका मशहूर हो या चूल्हे भाड़में जाये। इन्होंने अपने धर्मकी अच्छाई, अपने धर्मके कर्त्तव्य बतानेके बजाय दूसरे मजहबोंके गलेपर उल्टी आरी चलानी शुरू कर दी।

श्रीराम—अजी हज़रत, ज़रा धीमे पड़िये। औरोंके मुँहमें भी ज़बान है।

दूबे—क्यों महाशयजी, आप धर्मका प्रचार करते हैं या लड़ाई-झगड़ा फैलाते हैं?

भाई साहब—यह मुफ़्तमें बैठे-बैठाये 'खण्डन' क्यों करने लगे आप? दूसरोंमें ऐब लगानेसे आपका क्या फ़ायदा निकलता है? इसी तरहसे कोई आपमें दोष निकाले तब?

उपदेशक—निकाले कोई, हम जवाब देंगे।

भाई साहब—तो प्रचारका मतलब अब ऐबोंका निकालना और जवाब देना रह गया?

उपदेशक—बिना ऐब निकाले फिर कैसे तुलना हो ?

भाई साहब—तुलनाकी जरूरत ?

उपदेशक—अपने धर्मकी श्रेष्ठता दिखलानेके लिये।

चूबे—एक मनुष्यको भला आदमी साबित करना हो तो उसकी खूबियां दिखाकर भला आदमी बतानेके कारण एक दूसरे आदमीको पकड़ लावें और उसके ऐब खोलने लगें। यह उसको चोर कहे और वह उसको। बाद जो चोर कम मालूम हो, वह आपके ख्यालमें भला आदमी है—क्यों ?

भाई साहब—अरे भाई, श्रेष्ठता दिखानेके लिये तुलनाहीकी अगर ज़रूरत है तो गुणोंकी क्यों न तुलना करिये, बुराइयोंके पीछे क्यों पड़े रहते हैं ?

उपदेशकजीने न माना। रेती ऐंड़ी-बैंड़ी चलाते ही गये। सोते हुए आठ-दस आदमी उठके बैठ गये। एक दाढ़ीने दूसरे किनारेके कम्पार्टमेन्टसे हाँक लगाई। उपदेशकजी चट कूदते-फाँदते, रौंदते-कुचलते वहाँ पहुँच गये। तुरन्त मामला गर्म हो गया। पानीमें ढेला फेंकनेसे छींटा ज़रूर ही पड़ेगा, फिर जैसा पानी वैसा छींटा। मुमकिन नहीं कि गाली दें और साफ़ बच जाएँ। इसलिये उपदेशकजीकी बदौलत अपने धर्मपर उधरसे भी खुर्पे चले और उसके साथ-साथ घूंसे साक्षात् महाशय उपदेशकजीको घातेमें खूब मिले। मुक्के बाज़ी देरतक जारी रही, यह अभी खतम भी नहीं हुई थी कि उपदेशकजीने चट सरतोड़ओंकी मदद माँगी, मगर वह ऐन मौकेपर कट गये।

दूसरेके हाथमें जाकर इनकी पीठकी मजबूतीका खुद मोआ-इना करने लगे। एकही लाठी चली थी, पर किस्मतकी मार, एक सोते हुए चौबेजीपर जा पड़ी। वह घबड़ाकर एकबारगी उठे।

चौबेजी—वकील साहब, दौड़ियो दौड़ियो। शुशरी छत गिर पड़ी।

वकील भी चौंक उठे और हाँक लगाई—गिर पड़ी, गिर पड़ी। अजी, खाटके नीचे घुस जाइये।

चौबेजी—अरे ए! ए! काहि कूँ मारता है?

वकील साहब—अरे! मारपीट!! पुलिश! पुलिश!!

इस गुलगपाड़ेमें एक तीसरे साहब ऊपर चौंके—

कहाँ राम राम, कहाँ टेंटें! ये कम्बख्त जबसे चढ़े हैं, परेशान ही करते रहे। हर बातमें पुलिश!

चौबेजी—ये आशमानपर कौन बोला!

आदमी—तुम्हारा बाप। बुलाओ 'पुलिश' को। तुम्हारा भी चालान करायेंगे। तुम बहुत गुल मचाते हो।

वकील साहब—नहीं जी, पुलिशकी कुछ दरकार नहीं।

आदमी—है दरकार। बुलाओ कोई।

चौबेजी—काहिकूँ? अजी मारपीट काँ भई? जे तो ज्वाँमर्दी शीकता था।

वकील साहब—ज्वाँमर्दी नहीं, दिल्लगी करता था।

स्टेशन नज़दीक आया। गाड़ीकी घरघराहट धीमी पड़ते ही वकील साहब टट्टी-टट्टी करते पाखानेमें घुस गये और दरवाजा भड़ाकसे बन्द कर दिया। चौबेजी अपनेको अकेला पाकर बहुत घबड़ाये, समझा कि रही सही मेरे सर गई, फौरन पाखानेके दरवाजेपर डट गये। अजी वकीलजी ओ वकीलजी, तनिक निकल आइयो जी। फिर जाइयो तुम। वकील भीतरसे बोले:—

अजी चौबेजी! मुँह लपेटके शो जाओ। जल्दी शो जाओ, स्टेशन निकल जाय, फिर उठिये। जल्दी कीजो, नहीं तो पुलिश···" गाड़ी रुकी, वकील साहबकी जबान बन्द हो गई और चौबेजी गड़ापसे मुँह लपेटके लुढ़क गये। दाढ़ी मय एक गोलके उतर गई, दो कम्पार्टमेन्ट बिलकुल साफ हो गये। ऊपरके बर्थका आदमी नीचे आ गया। मस्तानी जमाअत भी कुछ उस कम्पार्टमेन्टमें पहुँच गई।

आदमी—(उपदेशकसे) अरे यार, मार खाई तो खाई, डण्डा तो हाथ लगा।

श्रीराम—अजी हजरत, यह मारतंडअली इन्हींके हैं!

आदमी—खूब! मियाँकी जूती मियाँके सर! भई वाह! तब इस नमकहरामको साथ क्यों लिये फिरते हैं?

दूबे—इसलिये कि मारनेवालेको डण्डा ढूँढ़ने दूर न जाना पड़े।

आदमी—तब तो यह ठाकुर बम्बूबख्शसिंह आपके गुरु पूरे हैं। राहसे बेराह नहीं होने देते।

दूबे—इस वक्त भी तो कनैठी देकर ज़रा सुर दुरुस्त किया है।

आदमी—जी हाँ! सुन रहा था मैं। भैरवीके वक्त 'खण्डन' का राग अलाप रहे थे।

श्रीराम—बेवक्तकी शहनाईका नतीजा यही है।

दूबे—उपदेशक महाराज कमज़ोर तो बहुत हैं; मगर हिम्मत बेढब है।

श्रीराम—तभी ज़बान आरेकी तरह चलती है।

आदमी—ब्रह्मचर्यका ज़ोर होगा। क्योंकि उपदेशक हैं। ब्रह्मचारी ज़रूर होंगे।

उपदेशकजी—(एकदम ऐंठ गये। छाती फूलाकर बोले) बेशक, ब्रह्मचारी तो हूँ ही।

दूबे— क्यों जनाब, आपके बाल-बच्चे, जोरू-जाँता कोई है?

उपदेशक—हाँ, एक नौ बरसका लड़का है, तीन छोटी-छोटी लड़कियाँ हैं और···

आदमी—ज़रा ठहरिये तो, आप ब्रह्मचारी कैसे हुए?

उप०—वाह! हुए क्यों नहीं? वह शादी ही अशुद्ध है।

दूबे—इसलिये उस सिलसिलेमें जितनी बातें हुई हैं, वह सब ग़लत हैं। यह बारीकी अब समझी।

श्रीराम—यानी जो बात गलत है, उसका होना न होनेके बराबर है। इसलिये इनका ब्रह्मचर्य्य फिर ज्योंका त्यों है।

इसपर उपदेशकजीने ब्रह्मचर्य्यका व्याख्यान शुरू किया।

आदमी—अजी महाराज, आप अपनी फिकिर कीजिये। ईश्वरकी कृपासे आपके जैसे पाँच ब्रह्मचारी आयें तो हमलोगोंमेंसे किसीका हाथ नहीं हिला सकते।

श्रीराम—(उपदेशकजीसे) जरा हजरत खिड़कीके बाहर हो मुँह करके।

इसपर भी व्याख्यान बन्द नहीं हुआ। तब दूबे उठे और उपदेशकजीको गोदमें उठाकर दूसरे कम्पार्टमेन्टमें ले गये। और खिड़कीके बाहर मुँह कर दिया और कहा कि अब पेटभरके लेक्चर दीजिये, कोई हर्ज नहीं। यह पेड़ पत्ते खूब सुनेंगे।

आदमी—(दूबेसे) आइये, दर्देसरको आपने यहांसे खूब हटाया।

श्रीराम—फायदा क्या हुआ? वह फिर दिमाग चाटने उचकके वहां हो रहा है।

दूबे—भाई, यह तो मार-मारके व्याख्यान सुनाता फिरेगा।

इतनेमें पाखानेका दरवाजा हिला। उसी वक्त उस आदमीने कहा, अरे! पुलिस! दरवाजा फिर ज्योंका त्यों हो गया।

आदमी—बोलो मत। दो बेवकूफ फँसे हैं। पुलिसके

डरसे एक तो पाखानेमें घुसा हुआ है, दूसरा मुँह लपेटे वह कोनेमें पड़ा हुआ है।

श्रीराम—वाह रे ईश्वर। शकरखोरेको शकर ही देता है। लो आड़े हाथ।

दूबे—यह आ कहाँ रहे हैं?

श्रीराम—अरे कहीं आते हों, हमको तो गदहोंको उल्लू बनाना है।

भाई साहब—मालूम होता है कि यह लोग पुलिसके चंगुलमें कभी फंस चुके हैं।

आदमी—हाँ हां, वह तो इनकी बातोंसे ही मालूम होता था। तभी तो ये लोग पुलिसके नामसे डरते हैं।

स्टेशन आया, बड़ी देरतक गाड़ी खड़ी रही! जब छूटनेका वक्त आया तो श्रीरामने सोते हुए चौबेजीके कानमें चुपकेसे कहा कि तुम्हारा साथी स्टेशनपर अभी उतरा है। यह सुनते ही वह चट उठ बैठा और बोला वकील साहब चलो गयो।

श्रीराम—हां! हां, बोलो मत। जबानसे आवाज निकली और पुलिस पहुँची। चौबेजी जल्दीसे गट्ठर वगैरह संभाल स्टेशनका बिना नाम-पता पूछे उतरकर बोले, वकील साहब किधर गयो! किधर?

आदमी—भाड़में।

चौबेजी—किधर?

दूबे—तुम्हारे वकीलका क्या हम पहरा दे रहे थे ?

इतनेमें पाखानेका द्वार फिर हिला। श्रीराम चिल्ला उठा, अरे अरे ! वह आयी पुलिस !

चौबेजी फिर गाड़ीके भीतर घुस आये और जल्दी-जल्दी दूसरी तरफका दरवाजा खोलकर स्टेशनकी उल्टी तरफ उतर गये, और इधर गाड़ी चल पड़ी।

———

उम्र गुज़री है इसी बज्मकी तरतारीमें ।

दूसरी पुश्त है चन्देकी तलबगारोमें ॥

'भरमार है, बरसातमें मेढकोंकी, गर्मीमें मच्छड़ोंकी, कातिकमें कुत्तोंकी, आफिसमें उम्मीदवारोंकी घरमें फरमाइशोंकी, हिन्दीमें सम्पादकोंकी, समाजमें उपदेशकोंकी और गली-गली चन्देवालोंकी। दो तो आफत, न दो तो आफत। थोड़ी तनख्वाह, आधीसे ज्यादा जुरमानेमें कट गई। चौथाई साहबके अरदलियोंने इनाममें वसूल किया। बचा-खुचा घर लेके पहुँचे भी नहीं कि दरवाजेपर चन्देवालोंने आ घेरा, कोई पत्र निकालनेकी फिक्रमें है, कोई सभा कायम करनेके ख्यालमें है। कोई हवनमें झोंकनेको तैयार है। कोई किरायेपर उपदेशकोंके बुलानेकी धुनमें है। अब बताइये कैसे अपना गुजर हो और कैसे बच्चोंका पेट पले? क्या इनकी नजर करे, क्या लेकर स्त्रीके पास जाए, जिसने पूरा महीना उंगलियोंपर गिन-गिनकर काटा है? क्या मुशकिलकी घड़ीके लिये रखे और क्या बच्चोंके शादी-ब्याहके लिये बचाये? हम यह नहीं कहते कि चन्दा नहीं देंगे। देंगे,

हज़ार बार देंगे। दिल खोलके देंगे। घर बेचके देंगे। मगर कब? हर वक्त। अच्छे कामके लिये और देशके लिये, किसीके संकटको दूर करनेके लिये, मुशकिलमें हाथ बटाने के लिये, मुसीबतज़दोंकी मददके लिये तो चन्दा ही नहीं, बल्कि जान व मालतक निछावर करेंगे। मगर ईश्वर बचावें इन अप टू डेट ज़बरदस्त और फैशनेबिल भिखमंगोंसे, जिन्होंने इसको अपना पेशा बना रखा है। अय मुफ्तखोरी-के मज़ा लेनेवालो! तुम गाढ़ेकी कमाईकी क़द्र क्या जानो? रहम! रहम! चन्देवालो, ज़रा दम लेने दो। भला यह कब माननेवाले! वह लीजिये, बीच चौकमें सरेशाम ही बग़लमें रजिस्टर दबाये जेबको खनखनाते हुए एक हज़रत दो आदमियोंके पीछे यह कहते हुए लपके—"नमस्ते! महाशयजी नमस्ते! भारतमाताका उद्धार आप ही लोगोंके हाथमें है।

यह सुनते ही एक चौंककर बोला—या वहशत! श्रीराम, देखो इधर।

श्रीराम—क्या है मोहन? अलखाह! उपदेशकजी वाह खूब मिले! आप तो सुबह स्टेशनपर खूब ही ग़ायब हुए।

मोहन—कौन उपदेशक! वही तो नहीं, जिनका ज़िक्र आज दोपहरको बड़े ज़ोरोंसे हो रहा था?

श्रीराम—हां भाई, वही गाड़ीवाले महापुरुष हैं यह। बड़े भाग्यसे फिर मिले हैं।

मोहन—महाराज, दण्डवत। मेरे भी नयन तृप्त···

उपदेशक—महाराजकी जगह महाशय और दंडवतकी जगह नमस्ते करना चाहिये। अफसोस! इतना भी आप नहीं जानते। भारतकी दुर्दशा फिर क्यों न हो?

श्रीराम—बस, उपदेशकजी चले आइये साथ। उस गाड़ीको किरायेपर करलें, फिर चले चलें भाई साहबके यहाँ।

उपदेशक—और यह नोटिस और रजिस्टर देख लीजिये ज़रा।

श्रीराम—सब वहीं देखूँगा। चन्देकी फिक्रमें हैं? बस, खातिर जमा रखिये, वहाँ बहुत मिलेगा।

गाड़ीमें बैठते ही मोहनने कहा—भाई श्रीराम, वह चौबे और वकील वाला किस्सा तो रही गया। इसको जल्दी खतम करो, तबीयत लगी हुई है।

श्रीराम—अच्छा, बताओ तो सही, कहाँ तक कह चुका था मैं?

मोहन—यहाँतक कि वकीलसाहब पुलिसके डरके मारे गाड़ीके पाखानेमें घुस गये थे और चौबेजी मुँह लपेटके ढेर हो गये। मगर थोड़ी देरके बाद स्टेशनकी उलटी तरफ उतरके भागे, बिना जाने हुए कि यह कौनसा स्टेशन है।

श्रीराम—तब तो अब थोड़ा ही बाकी है। दोनों महाशयको उतरना था यहीं। मगर एक नानकके चक्कर में आकर

पाँच-चार स्टेशन पहले ही उतर गया और वकील साहब, जो पाखानेमें बन्द थे, ज्यों-के-त्यों यहांसे भी आगे रवाना कर दिये गये।

मोहन—यह कैसे? क्या वह निकले नहीं उसमेंसे?

श्रीराम—निकलते कैसे, न जाने क्यों दोनों पुलिससे इतने डरे हुए थे कि एक तो जानपर खेलके भाग ही गया और दूसरा जब पाखानेसे निकलनेके लिये दरवाजा खोलना चाहता था कि बाहरसे हम लोग सब "पुलिस" "पुलिस" चिल्लाते थे। बस वह बेचारा वहीं दम रोकके रह जाता था। इस स्टेशनपर भी जबतक गाड़ी रुकी रही, नानककी वजहसे हम लोग वहीं डटे खड़े रहे, पर वकील साहब पाखानेका दरवाज़ा न खोला। हम लोगोंका ध्यान इधर बटा हुआ था कि उधर उप-देशकजी न जाने उतर कर कहाँ चले गये कि पता ही न चला।

इतनेमें किरायेवाली गाड़ी खड़ी हुई। श्रीराम और मोहन उतरे और उपदेशकजीका एक पैसा गिर गया, उसीको वह गाड़ीके भीतर ढूँढ़ने लगे।

श्रीराम—भाई साहब, आदाब अर्ज है। इक तोहफा लाया हूँ।

भाई साहब—क्या चीज़ है भाई?

श्रीराम—गाड़ीमें झांकके देखो तो सही।

भाई साहब—क्या कुछ गाने-बानेका सामान है?

इतनेमें उपदेशकजी गाड़ीसे बरामद हुए।

भाई साहब—अख़्ख़ाह ! उपदेशकजी साक्षात् पालागन ।

उपदेशक—नमस्ते कहिये नमस्ते ।

भाई साहब—माफ कीजिये, मैं अपने पालागन वापस लेता हूँ । यह बतलाइये, यहां कैसे आये आप !

श्रीराम—(अलग) शामत ले आई (जोरसे) चन्दा वसूल करने ।

भाई साहब—यह क्या ग़ज़ब किया आपने ? बेचारे भिखमंगोंकी क्यों रोज़ी मारी ? ग़रीब सातवें-आठवें कहीं इधर-उधर एक पैसा पा जाते थे । मगर अब आपके मारे उनकी कहाँ दाल गलनेकी ?

श्रीराम—भला, यह चन्देका रोज़गार कबसे किया ?

भाई साहब—दूसरी पुश्त है चन्देकी तलबगारीमें और क्या, इससे तो आपकी अच्छी खासी आमदनी होगी, भला महीनेमें कितना मिल जाता होगा इस तरह ?

श्रीराम—जैसे उल्लू फँसे ।

उपदेशक—जैसे दानी मिल जायें आज ही करीब २००) रुपया हो गया और अभी डिप्टी-कलक्टरोंके पास जाना बाकी है ।

श्रीराम—खबरदार, नजदीक जाइयेगा भी नहीं । फौरन Income Tax बंध जायगा । लेनेके देने पड़ जायंगे ।

भाई साहब—कोतवाल साहबके पास भी जाइयेगा, बड़े धार्मिक हैं अच्छी रकम मिलेगी ।

श्रीराम—क्या अपना चालान खुद कराने जायंगे ? आजकल कोतवाल साहब चन्देवालोंके पीछे हाथ धोके पड़े हैं दनादन आवारागर्दीमें चालान कर रहे हैं। बचे रहिये।

भाई साहब—लीजिये, उपदेशकजी, कुछ ताम्बूल-बाम्बूल भक्षिये।

मोहन—हाँ, लीजिये, पान लीजिये।

श्रीराम—अजीब आदमी हो, अभी पालागन शब्दसे भड़क चुके हैं और फिर तुम सादी जबानमें पान खानेके लिये इनसे कहते हो।

मोहन—भूल गया भाई। लीजिये, उपदेशकजी, पान चरिये। पानकी पत्तियाँ चबाइये। अब तो गल्ती नहीं है ?

भाई साहब—आखिर यह चन्दा किस लिये इकट्ठा कर रहे हैं ?

श्रीराम—अपने श्राद्धके लिये।

मोहन—वाह ! आपने नोटिस नहीं पढ़ा मालूम होता है। परसों महाशय भड़ामसिंह शर्मा उपदेशक और उनकी धर्मपत्नी पंडिता चतुर्वेद भंडारा देवीके व्याख्यान होंगे।

भाई साहब—ओहो ! यह नाम तो अजीब कुछ काटछांटके बना है। जापानी हैं क्या ?

उपदेशक—नहीं, यह हमारा और हमारी धर्मपत्नीके नाम हैं।

श्रीराम—अररररर ! यह कहिये, खुद ही घोड़ा और खुद ही साईस हैं आप ?

भाई साहब—मगर आपकी धर्मपत्नी अण्डारा पण्डारा देवी कहाँ हैं ? कोई औरत तो आपके साथ आज उतरी नहीं ?

भड़ामसिंह—औरत कहाँसे उतरती ? मेरी विवाहिता स्त्री जो है, वह मेरी अर्द्धाङ्गिनी नहीं कहला सकती; क्योंकि उसकी शादीमें रण्डी नाची थी। इससे शादी ही अशुद्ध हो गई और उसके साथ वैदिक विवाह नहीं हुआ था, बल्कि प्रचलित रीतिपर शादी हुई थी। ग़रज़ यह है कि वह शादी हर तरहसे अशुद्ध साबित हो गई। जब मुझे यह बात मालूम हुई, फौरन उस स्त्रीको निकाल बाहर किया, वह काशीके मोहताजखानेमें चली गई।

श्रीराम—वाह ! उपदेशकजी क्यों न हो। बलिहारी है अक्लकी।

मोहन—कोई लड़का वगैरह उस औरतसे नहीं हुआ आपके ?

भाई साहब—अजीब कूड़मग्ज़ आदमी हो। जब जड़ ही गलत है तो फूल-पत्ते सब गलत। क्यों उपदेशकजी, है न यही बात ?

श्रीराम—और क्या ? ख़ाहमख़ाह बच्चोंको हरामी साबित होना पड़ा।

भड़ामसिंह—इसीसे हमने लड़कोंको भी निकाला। वे सब ईसाई हो गये।

श्रीराम—वाह! वाह! बहुत दुरुस्त किया। चाहिये भी यही।

भाई साहब—औरोंकी शुद्धि यह करें और इनके घरकी शुद्धि कोई और करे। क्यों न हो, अदल-बदलका ख्याल रखना जरूरी है।

मोहन—तो फिर यह लन्धूरादेवी कहाँसे फट पड़ीं?

श्रीराम—लन्धूरा? अजी नहीं, श्रीमती बन्दरिया देवी नाम है।

भड़ामसिंह—नहीं, श्रीमती पण्डिता चतुर्वेद भंडारा देवी, यह मेरी सगी अर्द्धाङ्गिनी कहला सकती हैं। कल शादी हो जायगी। पक्की शादी। बिलकुल सही शादी होगी। वैदिक विवाह! वैदिक विवाह!

मोहन—आयँ! कल शादी है! परसों दुलहिन साहबाका व्याख्यान है और दूल्हे साहब यों चन्दा माँगते-फिरते हैं! न बारात न बराती! यह कुछ समझहीमें नहीं आता।

ड़ामसिंह—यह तो वैदिक विवाह है। इसमें अचरजकी कौन-सी बात है? इसमें न तो बरातकी जरूरत, न बारातीकी। न नाच न गाना, न बाजा न भाई-बिरादरी, न नाई न पण्डित, न रस्म, किसी चीजकी भी जरूरत नहीं। न खाना न पीना।

श्रीराम—न दुल्हा न दुलहिन।

भड़ामसिंह—दुल्हा-दुलहिनकी जरूरत होती है और एक विवाह-संस्कारकी किताबकी ! बस, यही तीन चीज। अगर वह किताब दोनोंको कंठ हुई तो पुस्तककी भी जरूरत नहीं होती।

भाई साहब—आपके वैदिक विवाहका आदर्श तो बहुत ही खुलासा है।

मोहन—अपने मतलबके लिये।

श्रीराम—तो यह कहिये, आपके ख्यालके मुताबिक विवाह क्या "मोरी तोरी उमर बराबर गोइयाँ" का कलमा पढ़ना है।

भाई साहब—अरे यार, इसकी क्या जरूरत ? सिर्फ आँखका इशारा काफी है। क्यों उपदेशकजी, ठीक है न ?

भड़ामसिंह—नहीं, विवाह-संस्कारका कण्ठ होना जरूरी है। वेदमें लिखा हुआ है।

भाई साहब—अपनी बातें अपने ही तक रखिये। वेद तक न पहुँचाइये।

श्रीराम—हाँ, हाँ, निजी बातोंमें ईश्वरका क्या दखल ?

मोहन—जो चीज जितनी मुशकिलसे मिलती है, उसकी उतनी ही ज्यादा क़द्र होती है।

श्रीराम—जबतक भिण्डी छै आने सेर, तबतक बड़ी मजेदार और जहाँ टके सेर हुई, बस कोई नहीं पूछता।

भाई साहब—हाँ, कुछ मालूम तो ऐसा ही होता है, शादीके महत्वको जितना ही घटाइयेगा, उतनी ही बेकदरी होती जायगी।

सुधारकी कुल्हाड़ी वहींतक चलाइये, जहाँतक फ़जूलियात हों। मगर जब छेव असलियतपर पड़ने लगे, फौरन हाथ रोक लेना चाहिये। नहीं तो ऐब दुरुस्त करते-करते असली चीज भी ग़ायब हो जायगी।

भड़ामसिंह—बस, इसीसे तो भारतकी दुर्दशा है। बेचारी लाखों वेश्याएँ शादीकी कठिनाईके कारण पतिके लिये तरस रही हैं। बिन ब्याही पड़ी हुई हैं। शोचनीय दशा है।

श्रीराम—बल्कि डूब मरनेकी बात है। बेचारियोंका उद्धार उपदेशकजी, आपहीके हाथमें हैं। भाई साहबको बकने दीजिये।

मोहन—अजी उपदेशकजी, मारिये गोली इन बातोंको। यह बताएँ, श्रीमती तन्दूरादेवीका व्याख्यान कहाँ होगा ?

श्रीराम—क्या बताएं, नाम ही ऐसा गड़बड़ है कि हर बार लोग भूल जाते हैं।

भाई साहब—खैर, कुछ हर्ज नहीं, क़ाफ़िया तो याद रहता है !

उपदेशक—महाशय बलवीरके दरवाजेपर। जरूर आइयेगा। ऐसा व्याख्यान न सुना होगा आप लोगोंने।

श्रीराम—वाह ! उपदेशकजी, आप ही हम लोगोंको रण्डियोंका नाच देखनेसे परहेज करनेको बताते हैं और फिर आप ही हम लोगोंको उस महफ़िलमें बुलाते हैं, जिसमें औरत खड़ी होकर बोलेगी। हम तो नहीं आयेंगे। जिस बातके लिये

हमको नाचसे परहेज है, उसीलिये हमको आपकी धर्मपत्नीके व्याख्यानसे परहेज़ है।

मोहन—हम भी नहीं जायेंगे। कहीं दिल ही ले लें।

भाई साहब—भई, हम तो कमसे कम सूरत देखने जरूर जायेंगे। नई नवेली हैं। होंगी बड़ी मजेदार।

भद्रामसिंह—आप बड़े दुराचारी मालूम होते हैं। मत आइयेगा व्याख्यानमें।

भाई साहब—किसको-किसको रोकियेगा महाशयजी? हमारे जैसे सैकड़ों जायेंगे। बेहतर है कि उनका व्याख्यान ही रोकिये।

एक आदमी जो दूर तख्तपर बैठा हुआ इन लोगोंकी बातें सुन रहा था, ज़ब्त न कर सका लगा बड़बड़ाने।

वाह रे ज़माना वाह! शादी न हुई तिजारत हुई। रोजगारमें शिरकत हुई। बीबीको बन्दरियाकी तरह नचा नचाकर चन्दा कमानेका ढंग निकाला। जब चाहा कम्पनी बनाई, जब चाहा तोड़ दी। यह तो मनकी मौज है। कुछ खर्च थाड़े ही लगता है और मज़ा यह होता है कि "करिया अक्षर भैंस बराबर" मगर वेद हर बातमें घुसेड़गे। धन्य हो महापुरुष!—धन्य हो! खरीद फरोख्त और ठेकेसे बत्तर शादीकी नौबत पहुँचा दी। फिर क्या भूखके वक्त चढ़ाओ नित नई हांड़ी। ज़रूरत पूरी होते ही उसे पटको अलग। जब नई मुफ्तमें मिल रही हैं तो पुरानी हाँड़ीकी पाबन्दी

कैसी ? क्यों न हो ? शादीमें फजूल खर्चियां और बुराइयाँ दूर करनेके मतलब ये लोग खूब समझते हैं। नये लोग नई बातें। कुछ दिनोंमें 'शादी' का नाम 'मातम' हो ही जायेगा। राम ! राम ! शादी-व्याहके समय न खुशियाली मनाएँ तो क्या मरनेपर खुशियालीका मौका आयेगा ? शादी-शादी और फिर हिन्दुओंमें शादी ! हमेशाका अचल सम्बन्ध इस लोकसे परलोकतक और वह ऐसा गुपचुप ? वाहरे सुधार ! फजूलियात और वाहियात बातोंके रोकनेके बहाने जरूरी और मुनासिब बातोंपर भी उल्टी अस्तुरा फेर दिया। एक अड़ियल टट्टू जब खरीदा जाता है, तब तो लोग थानेमें लिखाते हैं, रजिस्ट्री कराते हैं, ताकि सम्बन्धकी मजबूतीमें कुछ कसर न रह जाये और इतना बड़ा अचल रिश्ता जोड़नेके वक्त यह मनहूसियत ? किसीको कानों-कान खबर न हो। जो चाहो सो करो। मगर भाई, हिन्दू बढ़े नेमसे, तुरुक बढ़े तुरुकाईसे।

इतना कहकर वह आदमी उठा और एक तरफ चुपचाप चलता हुआ।

भड़ामसिंह—अरे ओ महाशयजी ! अरे ओ भाई जाने वाले ! ठहरो ठहरो। "हिन्दू" शब्द तो वेदमें कहीं लिखा ही नहीं। तो इसका क्यों प्रयोग करते हो ? खबरदार अपनेको "हिन्दू" मत कहा करो। क्योंकि··········यह कहते-कहते भड़ामसिंह उसके पीछे हो गये।

श्रीराम—अरे उनको बुलाओ। वह देखो, रामनाथके पीछे दौड़े जाते हैं।

भाई साहब—खब्ती है, जाने भी दो। हटाओ, बहुत दिमाग खराब किया हम लोगोंने इसके साथ।

मोहन—नहीं भाई! यह शादीका मामला कुछ अजीब पेचीदासा मालूम होता है।

इतनेहीमें एक पालकी गाड़ी सामने रुकी। उसमेंसे उतरकर दौड़ते हुए नानक आये और कहा कि एक नाई अभी बुलाओ और सवारी उतारनेके लिये तुरन्त परदेका इन्तज़ाम करो।

"शेखने मसजिद बना मिसमार बुत खाना किया।
तब तो यक सूरत भी था अब साफ बीराना किया॥"

हम लाखों बरसके गड़े हुए मुर्देको आज उखाड़ेंगे और गला फाड़-फाड़कर चिल्लायेंगे कि जिसको आदमी कहते हैं वह यह है। बोलता-चालता हुआ आदमी यह है। काम-काज करता हुआ आदमी यह है। इसके अलावा दूसरा कोई आदमी नहीं कहला सकता; क्योंकि वह वैदिक जमानेमें मौजूद नहीं था। हम प्यासके मारे तड़पेंगे। 'आब-आब' कहकर जान दे देंगे। मगर लफ्ज 'पानी' मुँहसे नहीं कहेंगे। बल्कि कहनेवालेका सर तोड़ देंगे। क्योंकि 'पानी' वेदका लफ्ज नहीं है। हम भूले-भटकोंको रास्ता बताने नहीं जायंगे। हम गिरते हुएको सम्भालने नहीं जायंगे। गैर फिरकेमें बहककर पहुंचे हुए लोगोंको बुलाने नहीं जायंगे। अगर जायंगे तो कहां, लफ्जोंके झगड़ोंपर, खुद झगड़ा खड़ा करेंगे और उसका ऐसा तूमार मचायेंगे कि दुनियामें त्राहि-त्राहिकी पुकार चारों तरफसे गूंज उठेगी। हमने वेदकी सूरत सपनेमें भी नहीं देखी है। शास्त्र-पुराणको छुआ नहीं है।

'साहित्य' का नाम सुनातक नहीं है। मगर टकेबाजी कई एक खण्डनकी किताबें बरज़बान रट डाली है। वही हमारी लिया-क़तका भण्डार है। उसीकी बदौलत तीन-तीन घण्टे हम लगातार बक सकते हैं।

हम अपने पुराने ढहते हुए मकानकी मरम्मत करने उठे थे। वह मकान जिसको कि ईसामसीहके पैदा होनेके कई हजार बरस क़बल जब आर्य जातियोंने इस पवित्र मातृभूमिके चरण पकड़े, अपने रहनेके लिये बनवाया था। जिसमें हमारे बाप-दादे पुश्तहापुश्तसे बड़ी धूमधामसे इसमें रहते चले आये। उसीकी मरम्मत करने हम उठे थे, मगर मरम्मत हमने नहीं की, बल्कि मरम्मतके बहाने उस मकानके आँगनमें एक नई पक्की दीवार खींच दी और अपने सगे भाईको दुश्मन कहकर उस पार निकाल दिया। उसी दीवारको हम रोज-ब-रोज मजबूत करते चले जा रहे हैं। ईश्वर चाहेगा तो हमारी मिहनत बरबाद नहीं जायगी। मकानके दोनों हिस्से गिरते-गिरते ढेर हो जायेंगे और वक़्तकी लहर जब उनको भी एकदम बराबर कर देगी, उस वक़्त भी हमारी निशानी ज्यों-की-त्यों कायम रहेगी। घर न होगा मगर फूटकी दीवार वैसे ही खड़ी रहेगी।

हम अपनी जाति भूल गये, शायद तेली थे या धोबी। बाप-का नाम याद नहीं है। हमारा नाम पहलेपहल कुछ और था। मगर थोड़ी हिन्दी पढ़ते ही उसे खींच-खाँच कर उसपर आरारोट-की कड़ी कलफ दे दी। 'कर्मणा जाति' के जोरसे दो-एक नकली

उपाधियाँ नामके आगे लगाकर 'पण्डित' कहलाने लगे। इसीकी बदौलत अपने मतलबके लिये नीचसे नीच कौमको धर्मके घेरायेमें लाकर शुद्ध कर लेनेका हमारा पूरा अधिकार यह है। यही हमारा काम है, यही हमारा धर्म है, यही हमारा प्रचार है। क्यों न हो, हम भड़ामसिंह शर्म्मा हैं। दुनियामें हम किसी कामके लायक नहीं हैं, इसीलिये हम उपदेशक हैं। बलिहारी! हमारी बलिहारी!

यही ख्याल करते हुए भड़ामसिंह रामनाथके पीछे लपके। रामनाथ थोड़ी दूर चलकर एक गलीमें मुड़ गया। मगर उपदेशक जी नाककी सिधाईपर चलते ही गये। हरेक आगे जानेवाले आदमीके सामने जाकर उसकी सूरत गौरसे देखते और यह कह-कर कि यह वह नहीं है, आगे बढ़ जाते थे। एक घण्टेकी दौड़-धूपके बाद एक ठाकुरबाड़ीके पास पहुँचे। थके तो थे ही। मन्दिरका साफसुथरा चबूतरा देखा, उचकके बैठ गये। प्यास लगी थी कि इतनेहीमें एक ब्राह्मण लोटा-डोर लिये "ठण्डा जल पीयो, ठण्डा जल पीयो" कहता हुआ सामनेसे गुजरा। वैसे ही भड़ामसिंहने हाँक लगाई।

महाशय, मैं भी जल पीऊँगा।

"महाराज" के नामसे हमेशा पुकारे जानेका आदी ब्राह्मण 'महाशय' के नामसे बहुत चकराया। वह भड़ामसिंहको चबड़ाकर सरसे पैरतक घूरने लगा। उपदेशकजीने चट उसके हाथसे भरा लोटा लेकर अपने मुँहसे लगा लिया। बिना अपनी जाति बताये

हुए लोटा इस तरहसे जबरदस्ती छू लेना भला वह कट्टर ब्राह्मण कब बर्दाश्त कर सकता था ? उसने बौखलाके पूछा, "अरे हिन्दू हो कि मुसलमान ?" 'हिन्दू' का लफ्ज़ कानमें पड़ते ही उपदेशकजी लोटा फेंक पिनपिनाकर उठ बैठे ।

खबरदार, जो तुमने फिर 'हिन्दू' कहा । हिन्दू कहानेवाले-पर लानत है । जो हमें हिन्दू कहेगा, उसका सर तोड़ देगें ।

अब ब्राह्मणको ताव कहाँ । कड़ककर बोला ।

—आयँ ! तू का हिन्दू नाहीं हो ?

भड़ाम०—कह तो दिया, नहीं ।

ब्रा०—तो सारे लोटवा काहे छुतिहा कै देले ?

इतना कहके उसने भड़ामसिंहके मुँहपर तड़ाकसे एक तमाचा दिया । जबतक वह सम्भलें सम्भलें कि इसने एक और जड़ दिया ।

ब्रा०—सबका बेधरम करे चला है । सारे लोटवा छुतिहा कैले तो कैले जुठार काहे देले ।

यह कहते हुए एक लात और जमा दी ।

बहुतसे लोग तुरन्त दौड़ पड़े । मार-पीटकी असलियत मालूम हुई । सब दोनोंको समझाने लगे । मगर उपदेशकजीकी गर्मी चढ़ती ही गई । हर बार ऐंठ-ऐंठकर कहने लगे कि, हम आर्य्य हैं और इसकी इतनी बड़ी हिम्मत कि हमको 'हिन्दू' कह दिया । हम इसका सर तोड़ेंगे ।

लोगोंने कहा, जाने दीजिये । वह बेपढ़ा गँवार है । क्या जाने

संस्कृत लफ्ज़के मानी। जिस मतलबमें आप 'आर्य्य' कहते हैं। उसी मतलबमें वह 'हिन्दू' कहता है। माफ कीजिये। अलग हट चलिये।

मगर उपदेशकजी कहाँ जाने पाते हैं। लपककर ब्राह्मणने कोट पकड़ा और बोला कि, लोटेका दाम धरे जाओ? बहुत कुछ दोनोंको समझाया गया। मगर न उपदेशकजी अपनेको हिन्दू कहने दें और न वह ब्राह्मण 'आर्य्य' का मानी हिन्दू जाने। इसलिये मारपीटके अलावा लोटेका भी दाम अठारह आने उपदेशकजीको देना ही पड़ा।

लोग जमा तो थे ही। भड़ामसिंहने प्रचारका अच्छा मौका ताड़ा। चटसे 'हिन्दू' शब्दपर व्याख्यान शुरू कर दिया। इसी सिलसिलेमें छुआछूतको भी लपेट लिया। अबतक तो गनीमत थी। मगर मन्दिरमें आरतीका घण्टा बजते ही उपदेशकजी बुतपरस्तीपर बुरी तरह टूट पड़े।

लोगोंने बहुत समझाया कि हज़रत, आप अपना वक्त क्यों यहाँ फ़जूल खराब कर रहे हैं? वहाँ आइये, जहाँ आपकी मददकी वाकई सख्त ज़रूरत है। उनको जाकर सम्हालिये, जिनके पैर ऊँचे नीचे पड़ गये हैं। जो बेचारे कहीं दूर गढ़ेमें मुद्दतोंसे गिरे हुए हैं, हम लोगोंको क्या कहते हैं? हम लोग तो एक ही घरके ठहरे। आप अपना आचरण साफ रखिये। हम आपको देखा-देखी खुद सम्हल जायेंगे।

दूसरा बोला—जी हाँ, ऐसे लोगोंकी यही आदत है। घरहीमें

अपना सारा वक्त बरबाद करेंगे और डण्डा लेके इस बुरी तरह घरवालोंके पीछे पड़ेंगे कि बेचारे परेशान होकर खाहम-खाह बाहर निकल पड़ें।

तीसरा—अरे भाई, तू क्या जाने यह घर बसानेकी तरकीबें हैं।

चौथा—वाह ! क्यों न हो ! जब फौजदारी करनेका मौका घरहीमें मिलता है तो बाहर क्यों सर तोड़ाने जायें ?

पाँचवाँ—अरे भाई, वो लेकचरारजी, ईश्वरके लिए जरा अक्लसे काम लीजिये। छातीपर कोदो न दलिये। मन्दिरहीमें खड़े होकर ठाकुरजीपर हजारों गालियाँ ! कोई नाक दबाकर ध्यान करता है, कोई हाथ जोड़कर, कोई माला लेकर ! असल मतलब तो उसपर लव लगानेसे है। किसी न किसी सूरतसे ईश्वरकी भक्ति तो दिलमें पैदा हो। असल चीज तो भक्ति है भाई !

छठा—जाने दीजिये जनाब, यह लोग बड़े बेहूदे हैं। आपका व्याख्यान बहुत ठीक है। मगर यात यह है कि घरपर किसीके ठिकाना तो है नहीं। इसलिये यहीं चले आये। देखा-देखी जरा ईश्वरका नाम मुँहपर आयेगा। यही बहुत है आजकल।

सातवाँ—अरे भाई, घरपर जोरू और दफ्तरमें बड़े बाबू—इन दोनोंके मारे हमारे तो नाकमें दम रहता है। ईश्वर भला करे, इस मन्दिरके बनानेवालेका, जिसने हमारे ऐसे लोगोंके

लिये ईश्वरको याद करनेको जरा जगह बनवा दी। सालमें एकाध दफे इधर भूले-भटके पहुंच गये तो याद आ जाता है कि ईश्वर भी है कोई चीज। वर्ना ईश्वरको तो एकदम ही भूल जाते।

लोगोंने हर तरह समझाया, मगर भड़ामसिंह न माने। अब ठाकुरबाड़ीके बनवानेवालेको गालियाँ सुनाने लगे।

एक—बहुत दुरुस्त। अब आपने असल कारणको पाया। न वह मन्दिर बनवाता, न यह सब झगड़े-बखेड़े होते।

दूसरा—और न इनकी रोजी बढ़ती। आप उसको क्यों बुरा-भला कहते हैं? आपके हकमें तो वह अन्नदाता है।

तीसरा—इस लिहाजसे तो यार, मुसलमानोंने बड़ा अच्छा काम किया, जिन्होंने करोड़ोंही मन्दिर तुड़वा दिये। हिन्दुओंकी बड़ी भलाई की। इनके मजहबके बखेड़ोंको मिटानेके लिये कितनी गजबकी कोशिश की।

तीसरा—तो हुआ क्या? फिर बहुतसे मन्दिर उग आये। उनसे जरासी गलती हुई। वह गलती यह महात्माजी खूब समझते हैं। यानी मन्दिर तुड़वानेके पहले मन्दिर बनवानेवालेको खतम करना चाहिये, ताकि जड़ ही साफ हो जाये।

चौथा—वाह! वाह! धन्य हैं यह। मज़हब खूब साफ हो जायेगा।

पाँचवाँ—बिलकुल जड़से बनाव! इसका नामोनिशान रह जाय तो बात क्या है। "ग़ोरी" और "ग़ज़नीसे" जो काम न हो सका, उसको यह महात्माजी पूरा करके छोड़ेंगे।

छठा—क्यों भाई! क्यों जलेपर नमक छिड़कते हो। धन्य हैं हमारे बुजुर्ग लोग, जिन्होंने इन मन्दिरोंको बनवाया और न कुछ समझो तो इसको हिन्दूपनकी निशानी ही समझो। जहां एक कुआं बनवा दिया, वहां एक मन्दिर भी सही। इसलिए कि थकेमांदे आये, जरा देर सुस्ताये। ईश्वरका नाम लिया। फिर आगे बढ़े। अब तो लोग ऐसे पैदा हुए हैं, कि कुआँ और मन्दिर बनवाना अलग रहा, इनकी मरम्मत ही कराना मुश्किल हो गया।

साँतवाँ—अजी, यह नहीं कहते कि एकदम तुड़वाके मैदान करानेकी लोग अब फिक्रमें हैं। वह कहिये। बुजुर्ग लोग अगर इतना भी न कर जाते तो आजके रोज हमारी गिनती किसीमें न होती।

आठवां—बेशक महात्माजी, आपका कहना ठीक है कि ईश्वर हर जगह याद किया जा सकता है। मन्दिरकी कोई जरूरत नहीं है। मगर हर खास वो आमके लिये और रोजमर्राके कामके लिये एक खास पवित्रस्थानका होना कोई बुरी बात नहीं मालूम होती।

नवाँ—ठीक है, किसी बादशाहने एक शायरसे कहा था कि तुम तो एक शेर कहनेके लिए सुहाना वक्त, तबियतका मौज

होना, अगड़म-बगड़म बहुतसे झगड़े बताते हो, और हमको देखो, हम पाखानेहीमें ग़ज़लकी ग़ज़ल कह डालते हैं। उसने इसका जवाब दिया कि हुज़ूर बू भी उनमें वैसी ही आती है। इसीलिये भाई, हर किस्मके ख्यालके लिये उसके अनुसार जगह और वक्त ज़रूरी नहीं है तो कम-से-कम सोनेमें सोहागेका काम देते हैं।

दसवां—जी हाँ, गिरगिट भी ज़मीन देखके रंग बदलता है।

ग्यारहवां—अरे महात्माजी, यह क्या पत्थर-पत्थर लगाये हुए हैं आप? हम पत्थर थोड़े ही पूजते हैं। उनकी अक्लपर पत्थर है, जो यह समझते हैं। मूर्ति तो हिन्दुओंके पवित्रस्थानकी निशानी है। हर मज़हबवाले अपने पवित्रस्थानकी निशानी कुछ न कुछ बनाते ही हैं।

बारहवां—हाँ हाँ, साइनबोर्ड न लगाया, मूर्ति रख दी। क्या बेजा किया? इससे क्या हम बुतपरस्त हो गये? वाह! कहने-वालेकी ऐसी तैसी।

तेरहवां—अरे भाई, बड़ी खैरियत है कि मन्दिरोंमें मूर्तियाँ हैं, वर्ना एक न बचने पाते। शहरमें मकानोंकी इतनी कठिनाई है कि मूर्तियाँ न होतीं तो किरायेपर सब मन्दिर उठ जाते।

चौदहवाँ—अरे महात्माजी, मूर्तिसे अगर आपको चिढ़ है तो कुछ परवाह नहीं। मूर्तिकी तरफ पीठ करके बैठ जाइये और पूजा

कर लीजिये। ठाकुरजी जरा भी बुरा नहीं मानेंगे, बशर्ते कि आपके दिलमें भक्ति हो। क्योंकि असल मतलब भक्तिसे है।

भड़ामसिंहने न माना। मौकेको न समझा। खुल्लमखुल्ला गालियाँ देने लगे।

एक—वाह!

शेखने मसजिद बना मिसमार बुतख़ाना किया।
तब तो इक सूरत भी अब साफ़ वीराना किया॥

दूसरा—तुलसीदासजीने रामायणमें कितना अच्छा कहा है कि········।

भड़ामसिंह—बस बस बस, पाखण्ड रचनेवाले तुम्हारे तुलसीदासकी ऐसी तैसी। रामकी ऐसी तैसी! रामायणकी ऐसी तैसी———।

इतनेमें एक बिगड़े दिलने भड़ामसिंहका गला दबाया।

अपने देशके इतने बड़े लायक कविकी शानमें यह लफ्ज़! अपने देशके इतने बड़े-बड़े लासानी वीरकी शानमें ये लफ्ज़! खबरदार। अब जबानसे कुछ निकला कि जबान ही पकड़के खींच लूँगा। देशद्रोही कहींका।

दूसरा—लगाओ। चाँटा कसके! धर्मको बदनाम करनेवाला नास्तिक कहींका। दो-चार जो ऐसे मिल जायँ, तो ईश्वरकी रही-सही भक्ति भी दिलसे एकदम ग़ायब हो जाये। अपने धर्मसे नफरत हो जाये। क्योंकि यह ईश्वरतक पहुँचनेका कोई रास्ता तो बताता नहीं, बल्कि एक टूटा-फूटा पुराना रास्ता जो मालूम है

और जो ज़मानेकी बुराइयोंसे माना कि ख़राब होता गया है, उसको दुरुस्त करना तो दूर रहा, एकदम बन्द किये देता है। सुननेवालोंकी हालत मझधारमें बेखेवटकी नैयासी हो जाती है। नास्तिकपन तो फैलाता ही है।

तीसरा—नहीं, आजकलका फैशन है कि अपनेको बड़ा कट्टर और मज़हबी साबित करना हो, तो दूसरे मज़हबोंको खूब गालियां दो। इन्होंने रामको इसलिये गालियाँ दी हैं कि रामको कुछ लोग ईश्वर मानते हैं। रामकी वजहसे रामायण वाहियात है और इसीलिये तुलसीदासजी भी बुरे हैं।

चौथा—तो इनसे कौन कहता है कि, तुम रामको ईश्वर मानो? अगर किसीने उनको ईश्वर कहा भी, तो गोया अपने देशके बहादुरोंकी हद दर्जेकी कदर की। यह उसकी भलमनसाहत है। ईश्वर इतने बेवकूफ नहीं हैं कि, इन बातोंपर नाक फुलाया करें। राम तो राम ही हैं। कहनेवाले अपने माशूकोंको ईश्वरसे भी चार हाथ बढ़ा देते हैं तो क्या इन बातोंको ईश्वर नहीं समझते?"

पाँचवाँ—अरे ईश्वर बड़े भले आदमी हैं। इसीलिये उनकी चलती है। यह कम्बख्त आदमी ही हैं जो 'हम और तुम' में कटे-मरे जाते हैं। जो इस बातपर बुरा मानते हैं, कि उस अन्धेने हमारे धोखेमें दूसरे आदमीको सलाम कर दिया। अफसोस, वह इतना नहीं समझते कि अगर वह अन्धा हमारी तरफ मुँह करके सलाम करता, तब भी हमारे लिये वही इज्जत होती जो अब है।

अगर उसने हमें पहचाननेमें गलती की और हमारे धोखेमें दूसरे आदमीको सर झुका बैठा, तो क्या उसके दिलका भाव कुछ बदल गया ? कभी नहीं, क्योंकि असलमें उसने हमीको सलाम किया था। अगर पहचाननेमें कुछ धोखा खा गया तो कुछ परवाह नहीं। दिलका भाव देखना चाहिये। वह आदमी ही ओछे होते हैं, जो ऐसा ख्याल किया करते हैं और बाहरी बातोंके लिये जान दिये देते हैं।

पाँचवाँ—ईश्वर बहुत बूढ़े भी तो हो गये। शायद बुढ़ापेमें चिड़चिड़े हो गये हों।

छठा—अरे भाई, ईश्वरकी कोई खास सूरत तो है नहीं। वह तो हर जगह हर चीजमें हैं। तुम जिस चीजको चाहो, ईश्वर समझके लव लगाओ। अगर तुम्हारी भक्ति अचल और दृढ़ है, तो जरूर तुम्हें ईश्वर उसी सूरतमें मिलेंगे।

सातवाँ—हमें यह बात खटकती है, कि हम हिन्दुस्तानमें हिन्दूके घर पैदा होकर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी जैसे बड़े और योग्य कवि पर अभिमान न करें। रामायण सी शिक्षा भरी किताब का आदर न करें। रामसे बहादुर और लासानी राजापर गर्व न करें और उल्टे उनको गालियाँ दें। लानत है हमपर, फटकार है, धिक्कार है। उफ् ओ !

आठवाँ—नीचसे नीच, पापीसे पापी कोई हिन्दू हो, बशर्ते कि उसकी रगोंमें कुछ हिन्दूपनका खून मौजूद है, तो जरूर इन महात्माओंके नामपर वह गर्व करेगा और जब कभी किसी मन्दिरके

भीतर पैर धरेगा, वैसे ही उसके वाहियात ख्यालात जरा देरके लिये उसे छोड़कर अलग हो जायेंगे और साथ ही उसका कलेजा काँप उठेगा कि अरे! हम भी आदमी ही हैं। क्या इतना माहात्म्य इन बातोंका कम है? क्योंकि—

भड़ामसिंह—क्या? क्या? पत्थरकी मूर्ति और माहात्म्य? मन्दिरके भीतर जानेमें डर लगेगा? छिः! हम जूता पहिने हुए जाते हैं और तुम्हारे ठाकुरजीको उठाकर—

इतनेमें भड़ामसिंहके गालपर तड़ाकसे तमाचा पड़ा। फिर तो 'मार बेहूदेको' 'मार बेहूदेको' कहकर सबके सब टूट पड़े।

एक मसखरा बोला—महात्माजी मार खानेपर तुले ही थे। लीजिये मनोकामना आपकी पूरी हो गई। अब चढ़ाइये प्रसाद। हाँ, यारो जमाये जाओ।

'रुके न हाथ अभी है रंगे गुल्र बाक़ी॥'

बेपर्दा कल जो आईं नज़र चन्द बीबियां,
अकबर ज़मींमें ग़ैरते क़ौमीसे गड़ गया।
पूछा जो उनसे आपका पर्दा वह क्या हुआ,
कहने लगीं कि अक्ल पै मर्दोंकी पड़ गया।

गाड़ीमेंसे बड़े पर्देके साथ सवारी उतारी गई। भाई साहब, श्रीराम और मोहन तीनों हैरान थे कि वह पर्देवाली कौन है। अगर घरकी स्त्रियोंसे कोई मिलनेके लिये आई है, तो ज़नानखानेमें जाती। मगर नानकने इसको बाहरवाले मरदाने बैठकमें ले जाकर बैठाला है। यह मामला कुछ गड़बड़ मालूम होता है। नानकसे नई मुलाकात है। है मिलनसार तो क्या, मगर फिर भी इतनी आज़ादी ठीक नहीं मालूम होती। बदनामी मुफ्तमें गले मढ़ जायगी। इसलिये तीनों भीतरी भावको भीतर ही दबाकर नानकके दिलको टटोलनेकी ग़रज़से मज़ाकके पैरायेमें उससे पूछने लगे कि यह कौन है, कहांसे उड़ा लाये। मगर वह एक घुटा हुआ, अच्छा आड़े हाथ लिया इन लोगोंको।

नानक—वाह! हजरत वाह! हैं आप बड़े शौकीन। आप लोगोंकी जराहीमें नीयत डगमगाती है।

श्रीराम—अरे यार, देखनेमें भी कोई बुराई है?

मोहन—हम तो सिर्फ़—

देखने भालनेसे काम रखते हैं।
नीयते बद हराम रखते हैं।

भाईसाहब—अजी।

हमको तो दिल्लगीसे ग़रज़ है कहीं सही।

नानक—वाह री दिल्लगी! किसीका पर्दा जाये और किसीके लिये दिल्लगी हो! यों ही उंगलीसे पहुँचा और पहुँचेसे बांह पकड़ी जाती है। दूसरा कोई तरीका थोड़े ही है? बस, रहने दीजिये। मालूम हुआ। इसी ईमान और नीयतपर हमारे हिन्दुस्तानके नौजवान चले हैं दूसरोंका पर्दा फाश करने। रिफार्म (सुधार) की आड़में जो चाहो, कर डालो। ज़बान थोड़े ही कोई हिला सकता है?

श्रीराम—अरे यार, यों ही क्यों न कह दो, कि न दिखायेंगे। खाहमखाह लेक्चर क्यों झाड़ रहे हो? ठठेर-ठठेर कहीं बदलाई होती है?

मोहन—अगर नहीं होती, तो आप ही कायल करें।

श्रीराम—और क्या? यह आपकी पर्देदारी कोई पर्देदारी है? मैं जो अपनी सुनाऊँ, तो बस, उसके आगे सब किरकिरी हो जाय। सुनिये, एक 'अशांद' का शेर।

न खोली आंख वक्ते नज़्अ बीमारे मुहब्बतने,
किसीका पर्दा रखना था, कोई आंखोंमें पिनहा था।

नानक—बस, ज़बान और कलम ही तक।

भाई साहब—और नहीं तो कहांतक, रिफार्मकी हद यहींपर खतम हो जाती है।

मोहन—क्या क्या लोग हैं। डण्डा लेके चले हैं पर्दा भगाने। अरे भाई, देशको अमीर बनाओ; ताकि सबके पास गाड़ी-घोड़े या मोटर हो जाये, तो पर्दा आप ही आप भाग जायेगा।

नानक—हां, तब तो पर्देसे ढँके हुए ऐबोंको रुपया छिपा ही लेगा। खुद तो पहने हुए हैं फटा-पुराना बाबा-आदमके वक्तका चमड़ौधा जूता। बदनपर साबूत कोटतक नहीं। घरवाली बेचारी बरसोंसे एक ही लँहगा-ओढ़नीमें गुज़र करती चली आती है। मगर फिर भी चौकमें बीबी टहलानेका शौक मिस्टरके दिलमें है।

भाई साहब—और शिक्षासे भी तो पर्दा हट सकता है। इधर स्त्रीशिक्षामें तेजी करो, उधर पर्दा बेचारा चुपचाप सरकता जायेगा।

नानक—और असल चीज़ क्यों भूलते हो? उसको क्यों नहीं कहते कि, 'अय मर्दो, तुम अपनी नीयत दुरुस्त करो। पर्देकी आड़ अपने ही हट जायेगी। अपनेको कोई

नहीं देखता, मगर बेचारी औरतोंहीको नसीहतपर नसीहत दी जाती है।

मोहन—तो इसके लिये आप खातिर जमा रखिये। नीयत यहाँ बिलकुल साफ़ है, हम लोग सिर्फ़ ज़बानी ही जमाखर्च में तेज़ हैं।

श्रीराम—जी हां, बदनभरमें सिर्फ़ ज़बान हो ज़बान तो है। क्यों भाई साहब?

भाई साहब—अरे भई मुझसे क्यों कहलाते हो? सुना होगा कि लोग अक्सर अपनी नेकनीयतीके सबूतमें कहते हैं कि जैसो तुम्हारी मां-बहिन वैसी मेरी। उसी तरहसे मैं भी कहता हूँ कि जैसी तुम्हारी जोरू वैसी मेरी।

श्रीराम—लीजिये, यहां बड़े-बड़े धर्मात्मा बैठे हुए हैं। सबकी नीयत एकसी! दिखाना हो दिखाइये, नहीं तो और क्या कहूँ। घर घर औरत पहुँचाते फिरते हैं और शेखो और पर्देदारी इस कदर।

नानक—जी जनाब, यहां पिछड़ता कौन है? आइये।

भाई साहब—क्या बतलाऊं, जनेऊ तो उठते बैठते ऐसे बेमौके उलझ जाता है कि कुछ कहा नहीं जाता।

श्रीराम—मौकेसे उलझा है। कानपर चढ़ा लीजिये।

नानक—मगर जो मैं कहूँगा, उसकी आपलोग ताईद करते जाइयेगा।

मोहन—जिसकी भूमिका इतनी जबरदस्त है, वह मजमून भी कोई बेढब ही होगा।

नानक—हाथ कंगनको आरसी क्या ?

इतना कहकर नानकने बैठकका दरवाजा खोल दिया। सब लोग उसके साथ भीतर चले गये। मगर अन्दर पैर रखते ही सब एकाएक बड़े जोरसे चिल्ला उठे।

मोहन—जै सीतारामकी ! क्या मोहनी सूरत है। वाह ! वाह !

श्रीराम—मजमून तो यार बेढब ही निकला। तभी उस्ताद इतने गम्भीर बने हुए थे।

भाई साहब—अरे कौन चौबे, पर्दनशीन आप कबसे हुए ?

नानक—हाँ हाँ हाँ, चुप चुप, इनका नाम न लो।

श्रीराम—अरे चौबे हैं। अच्छा !

नानक—फिर नहीं मानते तुम। ईश्वरके लिए भाई इनका नाम न लो, क्यों किसी बेगुनाहको फाँसीपर चढ़वाओगे ? सरीहन देख रहे हो कि बेचारे छिपकर पर्देमें आये हैं और आप लोग खाहमखाह भण्डा फोड़ कर रहे हैं। बेचारेके नाम वारण्ट कटा है। इनकी हुलिया अलग तार द्वारा हर एक स्टेशनपर भेजी गई है और इनकी गिरफ्तारीके इनामका इश्तहार मोटे मोटे हर्फोंमें छपवाकर बाँटा जा रहा है। अब बताइये, बेचारेके लिये हर तरफ मुसीबत है या

नहीं? घर लौटें तो कैसे? बाहर कदम उठाते ही हिरासतमें ले लिये जायेंगे। वह तो बड़ी खैर हो गई कि इस वक्त मैं अपने एक दोस्तको लानेके लिये स्टेशनपर गया हुआ था। वह तो न आये। मगर यह चौबेजी दिखाई पड़े। हजरत वकील साहबको ढूँढ़ने आये थे। इनको क्या मालूम कि वह कम्बख्त वकील खुद तो मर गया, मगर मरनेका खून इनके गले मढ़ गया।

श्रीराम—हाँ हाँ, वह तो मरनेपर भी बोलता था और बार बार यही कहता था कि चौबेजीने हमको मार डाला है।

नानक—मैंने जब इनसे पूछा कि आप यहाँ कहाँ? कहने लगे कि यहीं तो हम और वह दोनों आ रहे थे। मगर हम चार-पाँच स्टेशन पहले ही उतर गये। अब इसी गाड़ीसे आये हैं। वकीलजी यहाँ पहले ही आ गये होंगे। वह हमारा आसरा जरूर इस गाड़ीसे देखते होंगे। मगर वह कहीं दिखाई नहीं देते। मैंने कहा, अजी वकील साहब यहाँ कहाँ दिखाई पड़ेंगे, वह तो बेटिकट जहन्नुम पहुंच गये और आपको भी वहीं बुला गये हैं। जल्दी अपनी दुनिया बदलिये, नहीं तो आप भी वहीं तुरन्त सिधारेंगे। इनकी कुछ समझहीमें नहीं आया। तब मैंने साफ साफ कहा कि, इस स्टेशनपर जब रेलका पाखाना खोला गया, तो वकील साहबजी उसमेंसे मरे हुए बरामद हुए। तहकीकातसे मालूम हुआ कि इनके साथ एक चौबेजी थे। उन्होंने इनके रुपये मारनेकी गरज-से इन्हें परदेशमें लाकर मार डाला और पाखानेमें बन्दकर गाड़ीसे

कूदकर भाग गये। तब तो बेचारे बहुत बौखलाए। गिड़गिड़ाकर कहने लगे कि हमको काशी किसी सूरतसे पहुँचा दो। बाल-बच्चों-के मुँहको तो आखिरी दफे देख लें। मैंने कहा, गाड़ी तो अब आपका कहीं आधी रातको मिलेगी। तबतक आइये, मैं आपको छिपाकर पर्देमें अपने यहाँ ले चलूँ और आपको खोपड़ी, दाढ़ी और मूँछ सफाचट कराकर और औरतकी पोशाक पहना दूँ। तब आप बेखटके उस भेषमें मकान चले आइये। आपके बाप भी आपको नहीं पहचान सकेंगे।

श्रीराम—हो बड़े गुरु। तुम्हींने तो वकील साहबकी लाश ढोई थी।

मोहन—ढोई थी कि यहांसे भी अगले स्टेशनोंको ज्योंका-त्यों रवाना कर दिया था?

नानक—*oh, Don't spoil the fun.* (दिल्लगी मत बिगाड़ो)।

श्रीराम और मोहन हँसी न रोक सके। दोनों बाहर दूर जाकर जी भरके खूब ही हँसे।

भाई साहब—*practical jokes are always unpleasant. I think it will be much better if you dont carry this too far* (ऐसी दिल्लगी अच्छी नहीं। अब इसको मत बढ़ाओ।)

नानक—*Good heavens! Whats the harm in it? He ouget to be thankful to us for getting both his*

duty head and face cleaned gratis, We are really doing a bit of charity to him; it'sall the same if he gets himself shaved eithet here for the sake of our fun or at the bank of the holy ganges for his own selfish motive. for having a seat reserved in heaven· He is simply takidg back with him some signs of having come to Allahabad. That's all.

(इसमें इनका नुकसान क्या। बैकुण्ठमें स्थान प्राप्त करके लिये गंगास्नानकके समय यह दाढ़ी मूछ सब मुण्डवाते हो। यहां मुफ्तमें हजामत बनी जाती है। जिसके लिये हम धन्यवादके भागी हैं। आखिर प्रयाग आनेकी कुछ निशानी तो होनी चाहिये।)

चौबेजी—जे राजी मालूम नाईं होत्तु हैं। मोको एक ज्वान लै रंगरेजीमें गिट्ट पिट्ट कत्तु है। अरे ओ भलेमानुष, वकीलजी शारो यदि मरि गवो तो जाणे दो। तेरो कोई वा नातेदार वो हवोई नाईं। मोको फिर फांसीपर चढ़ावन लै इत्तो फिकिर काहे कत्तु है? मेरो प्राण बख्श दीजो जी। जाणों खैरात कहीनी। जल्दी मेरे मुच्छ दाढ़ी मुड़ दीजो और लेहंगों दुपट्टो ला दीजो जी, जल्दी कीजो। तेरो हाथ पांव दोनों जोड़ूं हैं। शमझो ना।?

नानक—भाई साहब, आदाब अर्ज। अब कहिये।

भाई साहब—मान गया। हो पूरे उस्ताद!

———

इसमें शक नहीं कि वायज़ है खूब चीज़।
यह बात और है कि ज़रा बेवकूफ़ है॥

चौबेजीकी दाढ़ी और मूंछें सब मुंड़ गईं। खोपड़ी भी सफाचट निकल आई। ईश्वरने नाईको भी ऐसे मौकेसे भेजा कि चौबेजीकी हुलिया बातकी बातमें बदल गई। अब जाके बेचारेकी जानमें जान आई। झिझकते-झिझकते कमरेके बाहर ज़रा निकलने लगे। मगर नानकने उन्हें इस बातसे मना कर दिया और कहा कि, आप अभी पहचान पड़ते हैं। लहंगा ओढ़नी भी आ जाय, तब कसर पूरी हो जायगी। चौबेजी बेचारे फिर दर्बेमें घुस गये।

भाई साहब—अरे भाई, अब तो उनकी जान छोड़ो। कहांतक इनकी दुर्गति करोगे? बेचारेने तुम्हारा बिगाड़ा ही क्या है?

नानक—भाई साहब, आप तो अजीब ख्यालातके आदमी मालूम होते हैं। फिर मुफ्तमें उनकी हजामत बनवा दी। खाना खिलवाकर ठहरनेका भी इन्तजाम किये देते हैं और आप कहते हैं कि हम उनकी दुर्गति कर रहे हैं। दुर्गति तो

जब होती कि हज़रत आधी रात तक इधर-उधर मारे-मारे फिरते। कहीं खड़े होनेतकका ठिकाना न मिलता। इनको गाड़ीमें मजेसे स्टेशनसे ले आये। वैसी ही शानसे फिर वहां भेज भी आयेंगे। आनन्दके साथ बेचारे घर पहुँच जायेंगे। इन भलाइयोंके बदलेमें अगर हम इनको लहँगा-ओढ़नी पहनाकर उसी सूरतमें रवाना कर दें, तो कौनसी बुरी बात है?

भाई साहब—आखिर फायदा इससे क्या? फजूल लहंगा-ओढ़नीके खरीदवानेमें उनके दाम खराब कराओगे?

नानक—दाम खराब होंगे? यह खूब कहा आपने। हम तो इनकी घरवालीके लिये सौगातका सामान जुटा रहे हैं। बेचारीको कई बरसोंसे नई पोशाक देखनेतकको नसीब न हुई होगी। लहँगा-ओढ़नी देखते ही उसके रोएँ-रोएँ धन्यवाद देंगे। वह भी कहेगी कि हाँ, अबकी चौबेजीने हमारी भलबत्ता सुध ली। परदेशसे कैसी अच्छी चीजें हमारे लिये लाये हैं। हाँ यह कपड़े फज़ूल तो तब होते, जब इनके यहाँ कोई पहननेवाली न होती। रही खर्चे-बर्चेकी बात। उसके लिये क्या फिक्र? एक रोजका सूद न सही। कोई इनके बापका खर्च होता है? ऐसे मनहूस मक्खी-चूसोंसे जितना ही खर्च करा दो, उतना ही पुण्य है। पुण्यका पुण्य, इनका भी फ़ायदा, हमारा भी दिल बह-लाव! क्योंकि जब यह लहँगा फड़काके चलेंगे, यार लोग

लोट-पोट हो जायेंगे। कुछ दिनोंतक इस बातको याद करके खूब ही हंसेंगे। क्यों जनाब, आप ही बताइये नेकी कर रहा हूँ या बदी ?

भाई साहब—भाई, तुमसे पार पाना मुश्किल है। तुम्हारे ही ऐसे लोग स्याहको सफेद और सफेदको स्याह कर डालते हैं।

मोहन—यह भी एक योग्यता है। ऐसे लोग जो उपदेशक हों तो सचमुच धर्म और समाजके कुछ फायदे नजर आयें। नहीं तो किरायेके अड़ियल टट्टुओंकी बदौलत जो न हो जाय, वह थोड़ा है।

नानक—हाँ भई, उपदेशककी खूब याद दिलायी। वही जो हम लोगोंके साथ आज आये हैं।

श्रीराम—थोड़ी देर हुई, हम चौकसे यहां पकड़ लाये थे।

मोहन—अरे, अभी-अभी तो यहांसे गये हैं। सुना, बलबीर शर्माके यहाँ उनकी धर्मपत्नीका व्याख्यान है ?

नानक—भई, वह तो बुरी तरह अक्लके पीछे डण्डा लिये फिरता है। उसकी बातें सुनो तो मारे हँसीके पेटमें बल पड़ जाएँ।

श्रीराम—आखिर कुछ कहो तो।

नानक—बात यह हुई कि बलबीर अपनी भांजीकी शादीके लिये लड़का खोजने बनारस गये हुए थे। वह

चाहते थे कि घर भी अच्छा हो, कुल भी उत्तम हो, लड़का पढ़ा-लिखा होशियार और खूबसूरत हो। विवाह भी वैदिक रीतिसे हो और खर्च भी कम पड़े। भला, इतनी बातें इकट्ठी कब मुमकिन हो सकती थीं? इस परेशानीमें बेचारे थे कि इन महापुरुष उपदेशकजीसे मुलाकात हुई। उसने इन्हें बहुत दम-दिलासा दिया और समाजकी मौजूदा बुराइयोंपर लानत-मलामत-की रस्म-रिवाजोंपर उल्टी झाड़ू खूबही फेरी। यह बहुत खुश हुए, क्योंकि उसने इनके दिलकी बातें कहीं थीं। आखिर उसने इनसे कहा कि आप घर जाइये। शादीकी ज़रा भी फिक्र न कीजिये। मैं हई हूँ, और हर तरहसे आपके कामके लिए तैयार हूँ। इन्होंने उसको बहुत धन्यवाद दिया। बनारससे तो नाउम्मीद होकर यह ज़रूर आये मगर खैर, परतापगढ़में इनकी भांजीकी शादी जैसी चाहिए वैसी ही हो भी गई।

श्रीराम—अच्छा, तो इतने बड़े दीबाचेसे आखिर मतलब क्या?

नानक—सुनो तो। उपदेशकजीका यहाँ आनेका कारण यही है। गाड़ीसे उतरते ही हज़रत एक्का करके सीधे बलवीरके मकानपर पहुँचे और आते ही न सलाम न बन्दगी चट झोलेमेंसे एक लिखा हुआ लम्बा-चौड़ा व्याख्यान निकालकर बलवीरके हाथमें दिया और कहा कि इसको फौरन अपनी भाँजीको रटनेके लिए दे दीजिये। परसों यही व्याख्यान उनको देना पड़ेगा और आप उनकी शादीका चटपट इन्तज़ाम कीजिये। आज ही रातको मैं

उनसे शादी करूँगा। तबतक मैं नोटिस बाँटने और चन्दा वसूल करने जाता हूँ।

भाई साहब—खूब! बलवीरकी परेशानी दूर करनेका क्या अच्छा नुसखा बताया।

श्रीराम—ओ हो! यह मनसूबे! "आप बेफिक्र रहिये। आपके कामके लिये मैं तैयार हूँ", का यह मतलब निकला?

मोहन—तो यह हजरत दूल्हा बनके आये हैं और इस ठाठ से!

श्रीराम—जी हां रास्तेभर पिटते हुए। भला बलवीरने जवाब क्या दिया?

नानक—बेचारे सुनते ही हक्के-बक्केसे हो गये। काटो तो बदनमें लोहू नहीं। भला, जवाब क्या देते? और इधर यह इतना कहके लम्बे पड़े।

श्रीराम—मगर व्यख्यानवाली बात बड़े मार्केकी रही। इसमें सचमुच उसने अपने अक्लकी तेजी दिखला दी!

भाई साहब—नहीं, कोई ताज्जुबकी बात नहीं है। जो आदमी जिस पेशे और सोसायटीका है, वह अपनी हर बातका आदर्श उसीके अनुसार सोचता है।

श्रीराम—चलो भाई, बलवीरके यहाँ। वहां अच्छी चुहल रहेगी।

मोहन—जरूर चलना चाहिये। भड़ामसिंह भी घूम-घामकर वहीं पहुँचेगा। चलो, हजरतकी ऐसी खबर लें कि उनकी बहकी अक्ल ठिकाने ही लगाके छोड़ें।

नानक—अच्छा, तो आप लोग चलिये। मैं भी थोड़ी देरमें आता हूँ। चौबेजीकी भी तो फिक्र है। मुझको जरा उनके लिये लहंगा वगैरह बनाया खरीदवाना है।

भाई साहब—उनको अपने साथ ही लेते जाओ।

एक बर्ग मुज़महिलने यह स्पीचमें कहा,
मौसिमकी कुछ ख़बर नहीं अय डालियो तुम्हें।
अच्छा जवाब ख़ुश्क यह एक शाख़ने दिया,
मौसिमसे बाख़बर हूँ तो क्या जड़को छोड़ दूँ ?

रात अँधियाली है। अभी सिर्फ नौ ही बजे हैं यार लोग बलवीर शर्माके यहाँ इस वक्त जुटे हुए हैं। गाने-बजानेके साथ बीचमें रह-रहकर मज़ाक भी होता जाता है। गर्मीकी वजहसे लोग सामनेवाली फुलवारीमें बैठे हैं। दूबेकी कमी थी। वह भी बुलवा लिये गये। मगर नानकूका अभीतक पता नहीं है। इधर दूबेने हारमोनियमपर अपनी उंगलियोंकी घुड़दौड़ शुरू की। उधर मोहनने एक चीज छेड़ी।

"कोई प्रीतिकी रीति बता दो नई, मैं तो सारे जतन करके हार गई।"

श्रीराम—यह तो शायद महाभारतका गाना है।

बनारसमें जो कम्पनी आई थी, वह इस तमाशेको खूब ही खेलती थी।"

दूबे—मैंने भी यार, बी० ए० तक महाभारत पढ़ी। मगर उस वक्त समझहीमें नहीं आता था कि दुर्योधन क्या बला है और भैंसासुर किस खेतकी मूली है। मगर अब थियेटरमें इसका तमाशा देखा तो सब समझमें आ गया।

मोहन—अरे! यह आपका भैंसासुर महाभारतमें कहाँसे फट पड़ा भाई। बस, मालूम हुआ। हमारे यहाँके पढ़े-लिखे नवजवानों की अगर यही हालत रही तो कोई ताज्जुब नहीं कि कुछ दिनोंमें अपना नाम ही भूल जायें।

भाई साहब—हम लोग भी कैसे कैसे लाजवाब फैशनेबिल हैं कि अपने परमात्मा, धर्म, कर्म, पुराण साहित्य, काव्य, रस्म, रिवाज, हसब, नसब बाप दादोंके नाम सब एक सिरेसे सफाया किये बैठे हैं। इतना ही नहीं, बल्कि पैदा होते ही हम उनको रौंदते-कुचलते, ठोकरें मारकर दूर करते हैं।

मोहन—क्यों न करें ऐसा? इसीमें तो आजकल हमारी काबिलियत है।

श्रीराम—वाह! मैं उन लोगोंमें नहीं हूँ जनाब! और बातें तो शायद मैं नहीं जानता, मगर हाँ, रामायणकी कहानी मुझे मालूम है।

भाई साहब—यह हजरत रामलीलाकी बदौलत। अगर लड़कपनमें रामलीला देखनेका शौक न होता तो यह भी सफाचट ही थी, क्योंकि हमारे बच्चोंको कोई धार्मिक शिक्षा या अपने यहाँके ऋषि-मुनि वीर महात्माओंके जीवन इत्यादि पढ़ाने या

बतानेका न तो फैशन ही है और न इन बातोंकी तरफ़ माँ-बाप या समाजमें कोई ध्यान ही देता है। बेचारे बच्चे ऐसे लीला-तमाशेको खुद देखकर अपने यहाँकी जो कुछ पुरानी बातें जान लेते हैं, उसे चाहे धार्मिक, सामाजिक, पौराणिक या ऐतिहासिक जो कुछ कहिये—वही उनका ज्ञान है और इतना मसाला उनके बुढ़ापेमें क्या, बल्कि उनके परलोक तकके लिये काफी समझा जाता है।

बलवीर—भला इन बातोंके जाननेसे फायदा ?

भाई साहब—जबतक हम अपने आपको खूब न जान लेंगे, अपने इतिहास को अच्छी तरह न देख भाल लेंगे, तबतक भला किसी बातमें उन्नति करनेकी कैसे हिम्मत हो सकती है ? यही वजह है कि आजकल कोई नई ईजाद जहाँ देखी या सुनी, फौरन हम आपसमें एक दूसरेको तानेके साथ कहने लगते हैं कि 'यस्मिन् कुले त्वम् उत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते।' चलिये, फिर ज्यों-के-त्यों गावदीके गावदी ही रहे। अपने यहाँकी बातें न जाननेहीकी वजहसे हम हमेशा यही कहते हैं कि अजी, जब इतने दिनोंतक हमारे यहाँ कोई ऐसी ईजाद नहीं हुई तो भला हमारे किये क्या हो सकता है ?

बलवीर—मगर अपने यहाँकी बातें जिनको आप जाननेके लिये कहते हैं, वह सच्ची भी हैं ? सवाल तो यह है।

भाई साहब—हाँ, बिलकुल झूठी हैं। गलत हैं। बुरी हैं वाहियात हैं और पराई चीजें सब एकसे एक लाजवाब और

फैशनेबिल हैं। जब हम खुद अपनेको बुरा कहनेको तैयार हैं तो और फिर हमको ऐसा क्यों न कहे? अरे भाई दूसरोंकी रायपर क्यों बहकते हो? अपने मुँहसे उनको बुरा कहनेके पहले ज़रा उनको जान तो लो।

बलबीर—खैर ऐतिहासिक बातोंतक तो आपका कहना किसी हद्‌तक सही समझा जा सकता है। मगर पौराणिक बातोंके बारेमें—जिनमें ज़मीन आसमानके कुलावे मिलाये गये हैं--आप क्या जवाब रखते हैं? कमसे कम मैं तो इसको हर्गिज़ मान नहीं सकता।

भाई साहब—क्योंकि इसका विषय गूढ़ होता है, जिसका समझना ज़रा टेढ़ी खीर है। *Grammar* में आखिर *Figure of Fable, Parable* या *Allegory* किस दिनके लिये पढ़ा है? ज़रा अक्ल खर्च करो। खुद मालूम हो जायगा कि यह *Figure of speech* ऐसे ही गूढ़ और मुश्किल ख्यालातको जाहिर करने और उनको किस्सेकी पोशाक पहनाकर समझानेके लिये बना है। किस्सा झूठा हो तो हो, मगर उसके अन्दर जो चीज़ छिपी हुई है, वह तो असली है। वही चीज़ हमारा है। उसको अच्छा या बुरा अपनी जबानसे कहनेके पहले हमें उसको खुद परख लेना वाजिब है।

बलवीर—पुराने लोग भी क्या क्या अललटप्पू थे। भला ऐसी मुशकिल बातें लिखनेकी ज़रूरत क्या थी? ख़ाहमख़ाह अपनी बदनामी कराई।

भाई साहब—वह नहीं जानते थे कि तुम्हारी समझ दिनोंदिन इतनी तङ्ग होती जायगी।

"*We think our fathers fools, so wise we grow,*
Our wiser sons, no doubt will think us so."

ज्यों-ज्यों हम अक्लमन्द होते जाते हैं अपने पिताओंको मूर्ख समझते हैं। वैसे ही हमको भी हमारे लड़के समझेंगे।

हमारी आदमियत, हमारी कौमियत, हमारी हिन्दुस्तानियत, हमारी स्थिति, हमारी रस्म-रेवाजोंपर, तरज-तरीकोंपर, धर्म-कर्मोंपर मुनहसिर है। यही हमारी टांगें हैं। गो जमानेकी खराबियोंसे इनमें मोच आ गई है, जिसकी वजहसे न तो हम तरक्कीके मैदानमें दौड़ सकते हैं और न उन्नतिकी सीढ़ियोंपर चढ़ सकते हैं। फिर भी अभी गनीमत है कि इनके बल खड़े तो हैं। हाथ-पैरवाले आदमी तो कहला सकते हैं। अगर तुम सुधारकी कुल्हाड़ी अन्धेकी तरह उल्टी-सीधी लगाकर अपनी टांगोंको अलग कर दोगे तो हजरत, फिर तुम्हारी गिनती कहां होगी और किसमें होगी? रिफार्मके जरिये मोच दूर करो। टांगोंको न उड़ाओ। नये चलन, नयी बातोंमें शरीक होनेके लिये या उनको अपनानेके लिये तुम्हें कोई मना नहीं करता। मगर अपनेको न भूल जाओ। अपनापन अगर कायम रखते हुए दुनियाकी नयी-नयी बातोंको अपनानेकी कोशिश करोगे तो तुम्हें बड़ी मदद और सहूलियत मिलेगी। मगर अगर कहीं तुम पत्तियोंकी तरह हवाके बहकानेमें आ गये और अपनी डालीको

छोड़ दिया, इस ख्यालसे कि हवाके साथ ज़रा हम भी मनमाना उड़ें, तो बस, नतीजा ज़ाहिर है। अपनी शाख छोड़ते ही डांवाडोल होकर सूख जाओगे।

श्रीराम—और फिर भाड़में जाओगे।

इसपर सब हँस पड़े। महफिलकी गम्भीरता नष्ट हो गयी।

मोहन—मैं तो भई! किसी बातका कायल नहीं, सिवाय इसके कि "रिन्दी और आशिकीका है शुगल सबसे बेहतर। लेमनेड हो और ह्विस्की, बन्दा हो और बन्दी।" यही धर्म-कर्म ठीक है।

दूबे—तुम भी यार खाहमखाह सींग तुड़ाकर बछड़ोंमें शामिल होनेवाले हो क्या? अरे, यह दो आदमी बहस करने और शेर-शायरी पढ़नेके लिये क्या कम हैं? राम! राम! डेढ़ घण्टेसे दिमाग चाट रहे हैं। समझहीमें नहीं आता क्या करनेवाले हैं, यह लोग।

श्रीराम—दिमाग खराब कर दिया। मज़ा बिगाड़ दिया।

मोहन—अरे, भाई यही तो मैंने भी कहा था। मगर चिढ़ उठे खाहमखाह। वह लोग मानेंगे कहीं? यह लो—फिर शुरू किया।

बलवीर—आप भी, क्या इन गन्दे रस्म-रिवाजोंके पीछे इतना तूमार बांधे हैं। हम लोगोंके रस्म-रिवाज कोई रस्म-रिवाज

भी हैं। फजूलखर्चियोंका ढकोसला और झूठमूठकी पाबन्दी और अड़चन है।

भाई साहब—हमारे यहांकी रस्में! एकसे एक लाजवाब और खुशनुमा हैं जिनको देखकर और लोग ललचाते हैं और उनको हसरतकी निगाहसे देखते हैं मगर हम ऐसे जेन्टिलमैनोंकी निगाहमें वह सब *Nonsense* (व्यर्थ) है। पराये घरकी जूठन खाने हम दौड़ते हैं, मगर अपने घरके मोहनभोगपर नफरतसे थूकते हैं। जब कभी लफ्ज़ *illmination* कानमें पड़ता है, बस, रोशनी देखनेके लिये बेचैन हो जाते हैं। हजार कोशिशोंसे 'पास' लेकर वहां सरके बल पहुँचते हैं और पतलूनकी जेबोंमें हाथ डालके मारे खुशोके ऐंठ जाते हैं और मस्त हो-होकर कहने लगते हैं:—*Splendid! Highly admirable! Extremely pleasing to the eye* उन्हीं हिन्दुस्तानी साहब लोगोंसे जब दीवालमें कहा जाता है कि देखो, मिस्टर! आजकी रात सारा हिन्दुस्तान मारे रोशनीके जगमगा रहा है। तुम भी इस वक्त दमड़ी-धेला खर्च कर डालो, दो चिराग़ अपने बंगलेके बरामदेमें रख दो। तुम्हारे ही हिन्दुस्तानका यौवन और दुबला होगा। सब चीजमें एका चाहते हो। एका इसमें भी सही। सालभरका दिन है। इसी बहाने जरा तबियत ताज़ो हो जायगी तो साहब तुरंत पतलूनसे बाहर हो जाते हैं, और एक ही सांसमें उगलने लगते है। *O' nonscns! Extremely foolish and vulgar! Sheetwaste of moncy!*

नानक—(दूरसे) वाह ! भाई साहब ! वाह ! हम तो गुरशिद थे तुम बली निकले। दोस्त, तुम भी हो उपदेशक ही होने लायक।

भाई साहब—कौन नानक ? अरे भाई, कहां कहां छिपे बैठे हो ? कब आये कब ?

नानक—यह न पूछो। आये तो बड़ी देर हुई देखा। यहां तो *Philosophy* और *Metaphysics* की बड़ी-बड़ी बातें छांटी जा रही हैं। बस, भइया, मैं चुपकेसे अलग बैठ गया।

इतनेमें एक साहब और आये।

आनेवाले—अखखा ! यहां तो बड़ी मुहफ़िल जमी हुई है भई ! अरे यार, तुम्हारी तलाशमें एक परदेशी चारों तरफ मारे-मारे फिर रहे हैं। शराबखानेवाली गलीमें हुन्द मचाये हुए थे।

बल०—अरे ! मैं समझ गया वही उपदेशक होंगे। मकानका पता तो नहीं बताया तुमने ?

आनेवाले—जी हां, यह खूब रहा। मैं उनको साथ लेता आया हूँ। इस गलीमें कहीं पिछड़ गये हैं। आते ही होंगे।

नानक—यार कोई लपकके बुला लो।

बल०—नहीं भई। मुफ्तकी बला गले मढ़ जायगी। ईश्वर करे, यहांतक न पहुंचे।

इतनेमें आवाजपर आवाज आने लगी कि "यहां कोई

बलबीर शर्मा रहते हैं ?" और दूरसे एक आदमी आता हुआ मालूम पड़ा।

बल०—लो ! वह कम्बख्त पहुँच ही गया। अब मेरी खैर नहीं। ईश्वरके लिये मेरी इससे जान छुड़ाओ।

नानक—अच्छा, तो तुम मुँह लपेटके लेट जाओ। बाकी मैं निपट लूंगा।

———

"कहाँ मैखानेका दरवाजा गालिब और कहाँ वायज़।
पर इतना जानते हैं कल वह जाता था कि हम निकले ॥"

दूबे—अखखा! उपदेशकजी!

श्रीराम—आइये, भड़म बड़म तड़ङ्गसिंह शर्माजी।

मोहन—यह क्या वेहूदा नाम ले रहे हो?

श्रीराम—बेहूदापन क्या? ऐसा ही कुछ नाम ही है। पूछ लीजिये।

भाई साहब—क्यों जनाब, यह क्या बात है कि आपके यहाँ जितने नाम हैं, सब अजीब अजीब फ़र्मेके हैं।

नानक—मैं बताऊँ। इनके बापने शायद इनका नाम रखा था 'अभिराम' मगर जब हजरतने होश सँभाला तब 'राम' के नामसे इतने चिढ़े कि अभिमानको मलदलकर मरोड़ ही डाला। यहाँतक कि वह हो गया 'भड़ाम' फिर सिंह और शर्मा टाँकना तो बायें हाथका खेल था।

उपदेशक—क्यों, महाशयजी, आप लोग बता सकते हैं, बलवीर शर्माका मकान कौनसा है?

मोहन—आप भाँग पीये हुए हैं क्या? बलवीर शर्माका

मकान इस मुहल्लेमें कहाँ है ? वह तो यहांसे डेढ़ कोसपर रहते हैं।

दूबे—और वह घरपर हैं भी नहीं शायद, दोपहरवाली गाड़ीसे कलकत्ते चले गये।

उपदेशक—हाय ! तो फिर मेरा विवाह कैसे होगा ? आज ही होना चाहिये नहीं तो श्रीमतीजीका परसों व्याख्यान किस तरह होगा ?

नानक—इसके लिये न घबड़ाइये। बलवीरसे थोड़े ही आप शादी करने आये थे ? वह गये, जाने दीजिये। शादी आपकी चुटकी बजाते हो जायगी।

उपदेशक—हाँ हाँ, कोई पण्डित बुलानेकी भी आवश्यकता नहीं है। सब बातें मैं ही कर लूँगा।

नानक—बस, फिर क्या है ?

श्रीराम—ए उपदेशकजी, जरा अलग हटके बैठिये। बड़ी बू आ रही है। शराब पी है क्या ?

उपदेशक—शराब नहीं जी। महुएका शरबत !

श्रीराम—कहाँ भई, कहाँ, किसने पिलाया ?

बलवीर—(मुँह लपेटे हुए धीरेसे) अरे पीया होगा कम्बख्त-ने कहीं, तुम्हें क्या पड़ी है ? चलता करो जल्दी, हमारा दम घुट रहा है।

उपदेशकजी—देवीजीके यहाँ। उन्होंने अपनी शुद्धि करानेके लिये मुझसे प्रतिज्ञा की है।

श्रीराम—कौनसी देवीजी? जरा साफ-साफ हाल बताइये।

उपदेशक—हम बलबीर शर्माका मकान ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक गलीमें पहुंचे। वहां एक घरके द्वारपर एक देवीजी सुन्दर मचियापर बैठी हुई गुड़गुड़ी पी रही थीं। हमने निकट जाकर उनको नमस्ते किया और सविनय प्रार्थना की कि हे देवी, परदा-खण्डनी, स्त्री-अधिकाररक्षिणी, आप किस धर्मकी अनमोल रत्न हैं? आपका पति कौन भाग्यवान है? सो देवी, सविस्तर कहिये, जिससे हमारी उत्कण्ठा शान्त होवे। वह देवी हमको गृहके भीतर ले गई, आदरपूर्वक हमको स्वच्छासन देकर बोली कि मेरा कोई पति नहीं है। यह हृदयदाही समाचार हृदयपर वज्रसा लगा। परन्तु यह जानकर कि उस पूजनीया देवीने अपनी जीविकाके लिये अपने सकल जीवनको किसी स्वार्थी पतिके हाथ बिक्री नहीं किया है परन्तु वह स्वयं परिश्रम कर अपना निर्वाह करती है, हम आनन्दसे फूले नहीं समाये।

दूबे—बस; रहने दीजिये। मालूम हुआ किसी भटियारी या बेड़िनके घर घुसे थे आप।

उपदेशक—इतनेमें दो पुरुष भीतर आये। उनको मन्द-मन्द मुस्कुराकर देवीजीने आसन दिया और पान देकर अत्यन्त सत्कार किया। हा, खेद! हमारे यहांकी स्त्रियां ऐसा

सत्कार करना नहीं जानतीं। हमने कर जोड़कर विनती की कि हे देवो, बीबी नसीबनजी, कृपया हमारा मत आप अवश्य ग्रहण कीजिये और एक आदर्श होकर यहांकी स्त्रियोंको जो घोर अन्धकारमें पड़ी हुई सड़ रही हैं, सुधारिये। तब दोनों पुरुष बोले कि अच्छा दो रुपये जल्दीसे आप अगर महुएका शरबत मँगानेके लिये निकालें तो हम लोग अभी आपकी देवीजीको शुद्धि करानेके लिये राजी किये लेते हैं। हमने इस धर्मके कामके लिये चट दो रुपये निकालके दिये। उससे दो बोतलें शरबतकी आईं। उन लोगोंने पीया और देवीजीको भी पिलाया, तब सभोंने प्रतिज्ञा की कि हम लोग आपकी पत्नी श्रीमती चतुर्वेद भण्डारा देवीका व्याख्यान सुनने अवश्य जायेंगे और वहीं हम तीनों आदमी अपनी शुद्धियां करायँगे। अहोभाग्य! अहोभाग्य!

बलबीर—(मुँह लपेटे हुए) मर कम्बख्त! दूर हो।

श्रीराम—आपने भी शरबत चक्खा था?

उपदेशक—हाँ, मगर थोड़ासा। क्योंकि हमें वह कड़ुआ मालूम हुआ। तब उन दो आदमियोंने मुझसे कहा कि इस दफा आप खुद जाकर दो बोतलें और ले आइये। मगर मीठा लाइयेगा, ताकि आप भी पी सकें और दूकान का पता बता दिया। हम वहां गये। वहां देखा कि लोग शराब पी रहे हैं। हमें बड़ा क्रोध आया। हमने उन लोगोंको खूब लम्बा-चौड़ा व्याख्यान सुनाना आरम्भ किया।

मगर वह लोग बहुत थे और हम अकेले। तो भी हमने उन लोगोंको खूब मारा।

दूबे—यह कहिये, पिटे भी आप।

उपदेशक—इतनेमें यह भलेमानुष मिले। यह हमको बलवीर शर्माका मकान बतानेके बहाने यहां ले आये।

आनेवाला—अरे, हमको यह सब हाल नहीं मालूम था, नहीं तो सीधे हम आपको अजायबघर पहुँचा देते।

श्रीराम—अच्छा, यह तो बताइये, कि अब आपके पास चन्देके रुपये कितने रह गये?

उपदेशक—(जेब टटोलकर) आयं! यह क्या हुआ? कुछ भी नहीं। हाय! किसीने जेब काट ली क्या? हाय गजब!

श्रीराम—क्या हुआ भाई! जेब कट गई क्या?

भाई साहब—बस, वहीं देवीजीके यहां, आपकी हजामत बनी है। दौड़िये, दौड़िये, कुछ उसके घरका पता-निशान मालूम है? जल्दी कीजिये। यह क्या गजब किया आपने?

उपदेशक—नहीं, याद नहीं है। हाय! हाय! अब श्रीमतीजी-का व्याख्यान कैसे होगा?

दूबे—पहले रुपयेकी तो फिक्र करो। व्याख्यान होता रहेगा। मुफ्तका माल लोग यों उड़ाते हैं। शर्म नहीं आती।

भाई साहब—बस अब व्याख्यान हो चुका। ठंडे-ठंडे अब घर वापस जाइये आप। इस शहरमें अब आपका ठहरना

मुशकिल है। रुपये लुटा आये आप, अब व्याख्यानका इन्तजाम चूल्हेमें गया। चन्दा देनेवाले फौरन आपसे हिसाब मागेंगे और धोखा देनेकी इल्लतमें आपको जेलखाने भिजवायेंगे। समझे हज़रत ?

उपदेशक—हाय! व्याख्यान फिर टल गया ? तो क्या विवाह भी टल जायगा ?

दूबे—पहले मैं आपकी खबर लूँगा। पबलिकका रुपया रण्डियोंके यहां उड़ानेके लिये है ?

नानक—नहीं विवाह नहीं टलेगा। घबड़ाइये नहीं। बलवीर नहीं हैं नहीं सही, हम तो उनके चचा मौजूद हैं। चलिये, उठिये। चटपट आपकी शादी कर दूं। फिर आप दोनों दुल्हा-दुलहिन, इसी आधीरातवाली गाड़ीसे फौरन बनारसको चल दीजिये, नहीं तो सुबहको जरूर आप पकड़े जाइयेगा। दूबेजीको बकने दीजिये।

उपदेशक—बस, मेरा जीवन अब आपके अधीन है। यदि ऐसा हो जाय तो जीवित हो जाऊं। यहांका व्याख्यान टल गया तो कुछ हर्ज नहीं। बनारसमें श्रीमतीजीका व्याख्यान हो जायगा, वहांका व्याख्यान न टलने पावे।

नानक—चलिये, अब देर न कीजिये। आइये भाई साहबान, आप लोग भी आइये। रात तो अपनी ही है। एक रोज देर ही सही। उपदेशकजीकी शादी तो देख लीजिये।

श्रीराम—(नानकको अलग बुलाकर) यह क्या गजब कर

रहे हो ? हमारी कुछ समझहीमें नहीं आता। यह शादीका ढकोसला कैसे रचोगे ?

नानक—अभी अक्लके कच्चे हो। चौबेजी दुलहिन बने किस लिये बैठे हैं ? वह आखिर किस दिन काम आयेंगे। दोनोंका गठबन्धन कराके बनारस पैक कर दूँगा। जैसेको तैसा मिला। दोनों आपसमें निपटते रहेंगे।

भाई साहब—क्या भाई, चौबेजीकी बात है क्या ? मैं पहले ही समझ गया। वह भी तो इसी गाड़ीसे बनारस जानेवाले हैं।

श्रीराम—ओफ ओ ! कितने ग़ज़बका मज़ाक करते हो नानक ! कहांका फन्दा कहाँ लगाया, सचमुच गजब ही किया ! यों ही गोल-गोल बातें करते हुए और रह-रह कर बेतरह हँसते हुए उपदेशकजीको साथ लेकर सबके सब चल खड़े हुए।

दूबे—एक व्याख्यानका सुर अलापेगा और दूसरा 'खून' का राग छेड़ेगा और फिर असलियत खुलेगी तो हा हा हा हा हा हा हा ! खूब निपटेगी, जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।

———

"बिठायी जायेगी पर्देमें बीबियाँ कबतक।
बने रहोगे तुम इस मुल्कमें मियाँ कबतक॥"

पाठक ज़रा सम्हल जाइये। सारा मज़ा अब आपहीके हाथमें है। क्योंकि उल्लू फँसाना खेल नहीं है। वह भी एक नहीं, दो दो। फन्दा लगा दिया गया है। देखिये भड़काइयेगा नहीं, चुपकेसे हमारी मसख़री जमातके पीछे हो लीजिये और नानकके घर आकर डट जाइये। यहीं चौबेजी लन्धूरा देवी बने अस्तबलमें छिपे हुए बैठे हैं; क्योंकि सरे शामसे ही नानक भाई-साहबके यहाँसे इन्हें लाकर लहँगा-ओढ़नी पहनाकर यहीं बैठाल गये हैं और कह गये हैं कि अगर मकानके भीतर पैर रखियेगा तो औरतें झाड़ू लेकर दौड़ेंगी और बाहर रहियेगा तो पुलिस छोड़ेगी नहीं।

नानकने आते ही शादीके सामान, जो-जो उपदेशकजीने बताये, मरदाने मकानके आँगनमें जुटाये मांड़ोंकी जगहपर एक बांसका डण्डा गाड़कर उसमें थोड़ेसे खर खोंस दिये गये। उसीके पास उपदेशकजीने आकर विवाह संस्कार नामक पुस्तकको शुरूसे बरजबान पढ़ना शुरू कर दिया और आधीसे ज्यादे रस्में ख़तम भी कर चले।

बड़े इन्तज़ारके बाद दुलहिन साहबा पाँच हाथका घूँघट काढ़े कपड़ोंसे खूब लिपटी-लिपटाई नानकके साथ तशरीफ लाईं और वेदीपर आकर बैठ गईं। रंग ढंगसे लोगोंने ताड़ लिया कि यह चौबेजी नहीं कोई और ही है। शायद सचमुच यह कोई औरत हो। तौभी उस वक्त किसीने बोलना मुनासिब नहीं समझा। बेखटके शादी होने लगी।

उपदेशकजी मारे जल्दीके—क्योंकि गाड़ी छूटनेमें अब सिर्फ चालीस ही मिनट बाकी रह गये थे—खाली श्लोकोंके पहिले शब्द के बाद इत्यादि कहकर झगड़ा निपटाने लगे। सभी बातें तो अपने ही हाथोंमें थीं। खुद ही पण्डित, खुद ही नाई और खुद ही दूल्हा ठहरे। देर भला काहेको होती? लीजिये, शादी चटपट खतम हो गई।

इधर दूल्हे साहब आंगनसे बाहर बैठकमें बैठाले गये और उधर दुलहिन साहबा चट अपनी जनानी पोशाक उतारकर औरतसे अच्छा खासा मर्द बन गईं।

नानकने उस आदमीको शाबाशी देकर कहा कि खूब निबाहा। कल सुबह तुम्हें इनाम देंगे। जाओ, साईससे कहो कि गाड़ी तैयार करे।

यार लोगोंसे अब नहीं रहा गया। लगे पूछने कि चौबेजी कहाँ हैं?

नानक—घबराइये नहीं। यह चौबेजी हीके लिये इतनी कार्रवाई की गई। उनकी बारी अब आती है।

भड़ामसिंह शर्मा

दुलहिन साहबा पांच हाथका घूंघट काढ़े कपड़ोंमें खूब लिपटी-लिपटाई नानकके साथ तशरीफ लाईं और बेदीपर आकर बैठ गईं ।

दूबे—यार तुमने बेलुत्फी कर दी। चौबेजीको दुलहिन बनाकर भांवरें घुमाते तो कुछ और ही मजा आता।

नानक—वाह! तब तो सारा मजा ही किरकिरा हो जाता। चौबेजी फौरन भड़क जाते। अच्छा देखिये, अब चौबेजीको मैं लाता हूँ।

इतना कहकर नानक अस्तबलमें चौबेजीके पास दौड़ते हुए पहुँचे और लड़खड़ाती हुई जबानसे बोले कि चौबेजी, ग़ज़ब हो गया!

चौबे—(घबड़ाकर) का भवो—का भवो?

नानक—कुछ न पूछिये।

चौबे—मेरो शौगन्ध! भाई, बोलो, प्राण बचो कि गवो?

नानक—(उसी तरह) गवो बिलकुल गवो।

चौबे—हाय!!! कैशे भाई, कैशे?

नानक—खुफिया पुलिसको खबर हो गई है कि आप मेरे यहां छिपे हैं। अब वह आपको जरूर ढूंढ़ निकालेगी।

चौबे—तब कैसे प्राण बचे?

नानक—आप चुपकेसे इसी गाड़ीमें बैठ जाइये। घूंघट खूब लम्बा कर लीजिये। खबरदार! कोई मुँह न देखने पावे, खुफिया पुलिसकी निगाह बड़ी तेज होती है, समझे?

चौबे—अच्छा! अच्छा! परन्तु मेरे जीमें धड़कन शमा गयो। अकेले कैशे जायें?

नानक—तो फिर एक आदमी आपके साथ करना पड़ेगा।

चौबे—हां हां हां।

नानक—ठीक कहा। औरत अकेली जायगी तो लोगोंको जरूर शक होगा। अच्छा, तो एक आदमी आपके साथ बनारस तक जायेगा मगर उससे कुछ बोलियेगा नहीं और अगर बोलियेगा भी तो ऐसी बातें, जिससे मालूम हो कि आप औरत ही हैं। स्टेशनपर हम लोगोंसे बिछुड़ते हुए जरा रो दीजियेगा, जैसे औरतें रोती हैं।

चौबे—भलो कही।

चौबेजीको पालकी गाड़ीमें लादकर नानक बैठकमें आये और उपदेशकजीसे कहा कि "दुलहिन बिदा कर दी गई। गाड़ीमें बैठी हुई है। चलिये, आप भी सवार होइये।" फिर क्या था? भड़ामसिंह दनसे चौबेजीकी बगलमें बैठ गये। इनकी पगड़ीकी दुमसे चौबेजीकी ओढ़नीका एक सिरा बाँध दिया गया। चौबेजी-को चुपकेसे समझा दिया गया कि घूँघट लम्बा होनेकी वजहसे मुमकिन है, आप कहीं अपने साथीसे अलग हो जायँ, इसलिये इसी नकेलके सहारे आप इसके पीछे चलियेगा और उपदेशकजीसे कुछ कहनेकी जरूरत न थी, क्योंकि वह जान गये कि गाँठ जोड़कर दुलहिन बिदा की गई।

दसवाँ परिच्छेद

"वाहम शबे विसाल यह ग़लतफ़हमियाँ हुईं।
मुझको परीका शुभा हुआ उनको भूतका ॥

जब बनारसको गाड़ी छूटने लगी तो चौबेजीने स्टेशन पर वह चिल्ल-पों मचाई कि एक कोहराम मच गया। प्लेट-फार्मपरके सब लोग दौड़ पड़े। गाड़ीके मुसाफिर खिड़कियों-से गर्दन निकाल-निकालकर झांकने लगे। सोते हुए आदमी चौंककर उठ बैठे। लोगोंने लाख-लाख पूछा कि क्या हुआ? यह औरत इस तरह क्यों रोती है? मगर जवाब कौन दे? सभी यार लोग रूमालसे मुँह छिपाये रोनेका बहाना करते हुए दिलमें हँस रहे थे। देखा-देखी उपदेशकजी सचमुच रो पड़े। अन्तमें दूल्हा-दूलहिन दोनों रोते हुए हां गाड़ीमें बैठे। गाड़ी सीटी देकर चलती हुई, मगर चौबेजीका रोना न बन्द हुआ। थोड़ी देर तक मुसाफिर लोग दोनोंकी रुलाई देखकर अचरजमें पड़े रहे। बराबर इसका कारण पूछते रहे। मगर जब देखा कि बातका कोई जवाब देता ही नहीं, खाली कम्बख्त हम लोगोंकी नींद हराम किये हुए हैं, तब लोगोंने इन्हें डाँटना शुरू किया।

पहली ही डांटमें चौबेजीको पुरानी बात याद आ गई। फौरन बेचारे डरके मारे चुप हो गये। मगर उपदेशकजीका सिसकना जारी ही रहा। जब पेटभरके सिसक चुके तो आँसू पोंछके चौबेजीकी तरफ मुड़े।

भड़ाम—हे श्रीमती चतुर्वेद भण्डारा देवी!

चौबेजी खाक-बला कुछ न समझे।

भड़ाम—हे श्रीमती चतुर्वेद भण्डारा देवी!

फिर भी चौबेजी चुप रहे।

भड़ाम—हे श्रीमतीजी, आजसे आपका नाम श्रीमती चतुर्वेद भण्डारा देवी हुआ।

चौबे—हूँ?

भड़ाम—तनिक घूँघट खोलकर अपने चन्द्रमुखका दर्शन दीजिये।

चौबे—उहुँक्!

भड़ाम—मैं आपको मुँह-दिखाईमें यह व्याख्यान भेंट दूँगा। शीघ्र मुँह दिखाइये।

चौबेजी भड़ामसिंहकी बात कुछ-कुछ समझने लगे थे। मगर 'व्याख्यान' शब्दने फिर इन्हें बौखला दिया।

भड़ाम—यदि एतबार न हो तो यह व्याख्यान पहलेहीसे दिये देता हूँ। कृपया इसको अभीसे रटना शुरू कीजिये, कल यही व्याख्यान आपको देना होगा।

चौबेजीको बौखलाहटकी अब कोई हद न रही। इतनेमें एक

मुसाफिर अपने साथीसे कह बैठा कि यह औरत बड़ी बेडौल मालूम होती है। चौबेजी बेचारे और घबड़ा गये। समझा कि हमारो तोंद ही बेडौल है, यही सारा झगड़ा फोड़नेवाली है। इस ऐबको किस तरह छिपायें जिससे किसीको शक न हो कि हम मर्द हैं। यह सोचकर वे बोल उठे।

चौबे—शुनोजी मेरो पेटमें तीन महोनोंको बच्चो है।

राम! राम! यह चौबेजी क्या कह गये? उपदेशकजीको काटो तो लहू नहीं। घबड़ाकर चौबेजीसे पूछा कि—यह क्या श्रीमतीजी, भला तीन महीनेका बच्चा कैसे हो सकता है? नहीं आप झूठ कह रही हैं। ऐसा मत कहिये।

चौबे—यदि तीन महीनोंका न ठहरे तो छै महणोंमें तो कशरोही नाहीं। देखो, पेट कित्तो ऊँचो है।

अब और बना। उपदेशकजीने तो कुछ और ही मतलबसे यह बात कही थी और चौबेजीने कुछ और ही समझकर अपनी बचतके लिये ऐसा जवाब दिया। इन्हें क्या मालूम कि हम इनकी नयी ब्याही हुई दुलहिन हैं। इस बातपर हुज्जत और तकरार अभी और जारी रहती। मगर खैरियत हो गयी कि एक स्टेशन आ गया और इसी डब्बेमें एक कान्सटेबिल आकर बैठ गया। अब क्या था, दूल्हा दुलहिन दोनों ईश्वरको याद करने लगे। बेचारे सुबहतक दोनों दम साधे चुपचाप बैठे रहे। बनारसमें उतरकर जब ये लोग स्टेशनके बाहर हुए हैं, तभी सच पूछिये तो इन लोगोंने साँस ली है।

चौबेजीने बहुतेरा कहा कि बन्द गाड़ी किरायेपर कर लो। मगर उपदेशकजीने एक न माना। कहा, असबाब तो कुछ है नहीं, गाड़ीकी क्या जरूरत ? हम दोनों टहलते हुए चलेंगे। नयी रोशनीमें पर्दा कहां।

चौबेजी बेचारे क्या करें ? आगे-आगे उपदेशकजी और उनकी पगड़ीसे बंधी हुई ओढ़नीके सहारे पीछे-पीछे यह तोंद फुलाये मचकते हुए चले। तमाशा देखनेवाले इस बेतुकेपनको देखकर मारे हंसीके लोट गये।

इतनेमें उपदेशकजीको व्याख्यानका ख्याल आया। चौबेजीसे लगे कहने—देवीजी, आजही आपको व्याख्यान देना होगा। समय बहुत कम है। इसलिये मैं इस व्याख्यानको रास्तेभर पढ़ता हुआ आपको सुनाता चलता हूँ। आप इसको याद करती जाइये।

यह कहकर उपदेशकजी आगे-आगे व्याख्यान जोरसे पढ़ते हुए चले। अब बेतुकेपनकी कोई हद बाकी न रही। हंसनेवालों· का बुरा हाल हो गया। सैकड़ों इन दोनोंके पीछे हो लिये। बोलियोंपर बोलियां कसी जाने लगीं। मनचले रह-रहकर थपो-ड़ियां पीटने लगे।

चौबेजीसे अब न रहा गया। जरासा घूंघट खोलकर चारों तरफ आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगे कि क्यों इतना हुल्लड़ हो रहा है। मगर इतनेहीमें क्या देखते हैं कि सामने एक एक्केपर सवार वही हमारे वकील साहब सही-सलामत जीते-जागते आ

रहे हैं, जिनकी मौतने हमारी यह दुर्गति बना रखी है। अब क्या था ? मारे खुशीके बदहवास हो गये। दिलसे डर एकदम जाता रहा। गला फाड़कर चिल्लाते हुए उस एक्केके पीछे सरपट दौड़े और ओढ़नीके झपेटमें उपदेशकजीकी पगड़ी भी सरसे घसीट ले गये।

एक्का रुका। उसपर उचककर चौबेजी दनसे बैठ गये। ईश्वर जाने दोनोंमें क्या बातें होने लगीं। इतनेमें एक्केवानने घोड़ा हांक दिया। एक्का मय वकील साहब और चौबेजीके यह जा, वह जा, नज़रोंसे ग़ायब हो गया। मगर उपदेशकजी नंगी खोपड़ी लिये, आंखें फाड़े, मुँह खोले, हाथमें व्याख्यान थामे हंसनेवालोंके झुण्डके बीचमें खड़े वहीं तमाशा देखते रह गये!

"बे दुमका लेख"

'तमाम कौम एडिटर बनी है या लीडर।
सबब यह है कि कोई और दिल्लगी न रही॥'

खेतीके लिये मिहनत और मशक्क़तकी जरूरत, तिजारतके लिये रुपये और अक़्लकी जरूरत, वकालतके लिये सनद और दिमाग़की ज़रूरत, नौकरीके लिये सिफ़ारिश और खुशामदकी जरूरत, मगर आजकलकी हिन्दीकी सम्पादकीके लिये ईश्वर जाने किसी चीज़की ज़रूरत होती भी है या नहीं। जिसको देखिये, ऐरे ग़ैरे पचकल्यानी, सभी धन्नासेठ बने बैठे हैं और दिन-ब-दिन दनादन बढ़ते ही जाते हैं। बापने स्कूल भेजा, मगर बेटेको उपन्यासोंकी चाटने ले डाला। दूसरे अक़्लकी मोटाईके मारे पढ़ाईकी मामूली दौड़में भी न चल सके और इम्तहानकी पहली ही टट्टीमें भदभदाकर रह गये। दो-एक दफे फिर जो ज़ोर मारा, और कसरतका यही नमूना दिखाया, तो पाबन्दियोंकी सख्तियोंने बेटेको बैरंग ज्योंका त्यों घर वापस कर दिया। न रेलके दफ्तरोंके काबिल हुए न कचहरीमें उम्मेदवारीके लायक़ हुए। बापने नाखलफ कहा,

मांने कपूत बताया। हज़रतने कहा, जाओ, कुछ परवा नहीं। मैं और मां ढूंढ़ लूंगा। हिन्दीको अपनी मां बनाऊँगा। मान न मान, मैं तेरा मेहमान। वह माने या न माने। मगर मैं तो उनका सुपूत कहलाऊँगा ही और यों सम्पादक बन जाऊँगा। न इसमें रोक है, न टोक। न किसीके बाबाका डर है। सीधा-सादा रास्ता खुला हुआ है। मुफ्तमें एक लाइसेन्स हाथ आयगा और धन्देसे गुजर-बसर होनेका सहारा इस तरह हो जायगा। इसी फ़रमेके हमारे पकौड़ीलाल सम्पादक हैं। पढ़े कम और लियाकत ज्यादा। और फिर हिन्दीके लिये लियाक़तकी ज़रूरत ही क्या? घरकी मुर्गी साग बराबर। मसल है, कोतवालीका चबूतरा टर्रा बना ही देता है। फिर क्या, सम्पादक होते ही शेक्सपियरके चरित्रोंको समझनेकी काबिलियत हो ही जाती है। तुलसीदास और गालिबको बुरा-भला कहनेका अधिकार मिल ही जाता है।

अब रही लेखकोंकी फिक्र। वह बेकार और फिजूल हैं। जहां चाहिये, टके पसेरी लेखक और घातेमें बीस कोड़ी कवि ले लीजिये। जिस सिनका चाहिये। ताजे और बचकानोंके आगे पुराने और सेकेण्डहैण्डोंकी मिट्टी पलीद है और आपकी दुआसे सभी फ़र्स्टक्लास। क्योंकि आजकल तो काबिलियत और लियाकत सिर्फ मुशकिल लफज़ोंके इस्तेमालमें घुसी है और खड़ी बोलीकी बेतुकी कविताओंमें, और अगर कहीं उसमें शिक्षाकी दुम लगी हुई

तो हमारे सम्पादक पकौड़ी लाल अपनी खोपड़ीपर प्रकाशित करेंगे; क्योंकि हिन्दीमें बिना इस दुमके कोई लेख ही नहीं गिना जाता, लाल भावनाओंसे शराबोर लेख लिखिये। कागज़पर कलेजा तक निकालके रख दीजिये। भाषाको रवानगोमें पानीके बहावको मात कर दीजिये। चरित्रोंके खींचनेमें वह सफाई दिखाइये कि सिर्फ बोली ही सुनकर दिनमें उल्लू भी पहचान ले कि यह तो नखरोंसे कूट कूटकर भरी हुई, प्रेममें पगी हुई, पतिको बावली, नयी नवेली अलबेली है। मगर जो कहीं हमारे सम्पादकजीको टटोलने-से भी इसमें वह दुम न मिली, बस लेख बैरङ्ग वापस। "*Art for art sake*" की हिन्दीमें यह कदर है! वाह बीबी नसीहत *art* को छातीपर चढ़ी हुई तुमने अच्छी धांधली मचा रखी है। लेखकोंसे अपने आपको पुजवाती हो। उनके लेखोंको तौलनेके लिये तराजू और बट्टा बनी हो। घबड़ाओ नहीं। मैं आ गया। लेख छपे या न छपे परवा नहीं। कदरके बदले अभी गालियाँ हो सही। मगर तेरी खैरियत नहीं है। कलमके चाबुकसे मैं तेरी सूरत बिगाड़ दूँगा। *Art* से रौंदवा डालूँगा। लेखोंके पर्देमें छिपा दूँगा। दरवाजेपर *Art* का पहरा बिठा दूँगा। बस, हो चुका। दरवाजोंपर बहुत शोखीके साथ टहल चुकी। पाठकोंसे खुल्लमखुल्ला बातें कर चुकी। चल, अन्दर चल, मैं किसी मुर्दादिल सम्पादकको खुश करनेके लिये तेरी खुशामद न करूँगा। तुझे लाख बार गरज होगी तू खुद पैरों गिरेगी और लेखोंके पर्देमें रहेगी। वहाँ तेरी हवाखोरीके लिए खिड़कियाँ काफी हैं।...

लीजिये, दुम गायब हो गई। झगड़ा खतम हुआ। हिप! हिप!! हुर्रे!!!

हमारे रेलवाले सम्पादकजीने ऊपर लिखे हुए, 'बे दुमका लेख' शीर्षक लेखको एक मासिक पत्रमें इतना ही पढ़ा था कि वह मासिक पत्र हाथसे छूट पड़ा। पाँच छः आदमी जो इसे चावसे सुन रहे थे, इस मासिक पत्रको उठानेके लिये झपटे।

शङ्कर—भाई जरा, देखना तो, यह किसका लेख है? बड़ा बेढब *Satire* है।

बिशुन चन्दर—कितना जला-कटा लिखा है, और फिर भी इसब हाल है, अरे, अभी इसमें तो और है। पढ़िये सम्पादकजी! यह पत्र बदलेमें आता है क्या?

लाल मोहन—मालूम होता है, इस लेखकका कोई लेख कहींसे वापस आ गया है और उसने इसी बातपर दूसरा मजमून कस दिया है। ईश्वर बचाये ऐसे लेखकोंसे, जिस बातपर तुल जायँ फिर ग़ज़ब ही कर डालते हैं।

शङ्कर—क्यों सम्पादकजी, आखिर आप इतने सुस्त क्यों पड़ गये? बात क्या है, कुछ कहिये तो?

सम्पा०—कुछ नहीं, फूट और विग्रह हम लोगोंका सत्यानाश करेगा। सम्पादकोंमें. नाममात्र भी मिलाप नहीं है। नहीं तो आजके दिन यह जली-कटी हमको सुननी न पड़ती।

लालमोहन—आयँ! चोरकी दाढ़ीमें तिनका! यह आपने कैसे फ़र्ज़ कर लिया कि ख़ामख़्वाह पकौड़ीलाल हमी हैं।

शङ्कर—व्यङ्ग और कटाक्षका लिखना है सचमुच बहुत मुशकिल। ज़रा चूके कि बस लिखा-लिखाया सब चौपट और जो कहीं लेख कील-कांटेसे दुरुस्त उतर गया तो सभी नाराज़ और बिना वजह, महज़, यह समझकर कि मैं ही हूं जो शीशेमें बन्द किया गया हूँ। हालां कि बेचारे लेखकने कभी सपनेमें भी ऐसा ख्याल न किया हो।

स०—जिस लेखको मैंने लौटाल दिया, उसको दूसरे पत्रने छाप दिया। अफसोस! सम्पादकोंमें अगर मिलाप होता, तो लौटाला हुआ लेख फिर कहीं छपने पाता?

लालमोहन—लेख कैसा था और लौटानेकी वजह क्या थी?

सम्पादक—लौटालनेका पहला कारण यह था कि उस लेखमें कोई शिक्षा निकलती ही न थी। दूसरे उसमें इतना नख़रा था कि पढ़ने योग्य भी नहीं था।

शङ्कर—सम्पादकजी! साहित्य और चीज़ है और उपदेश और चीज़ है। एक अटल है और दूसरा ज़मानेकी हवाके साथ रङ्ग बदलता रहता है। दुनियामें अगर कोई चीज़ हमेशा कायम रहनेका दावा कर सकती है तो प्रकृति। मानवी प्रकृतिकी नयी-नयी सूरतोंको दिखानेवाले उसकी नयी-नयी अदाओंका फोटो खींचनेवाले लेखोंके सामने आपके लाखों शिक्षाओंसे भरे हुए उत्तमसे उत्तम लेख नहीं ठहर सकते। भावनाओंकी तरंगों, दिलके

ग़ुबारों, चरित्रोंकी मूर्तियोंकी बोलती हुई सच्ची तस्वीरें हर ज़मानेमें दुनियांके कोने-कोनेमें लोगोंको अपनी छटाओंसे मस्त करती रहेंगी। यही साहित्यकी सरताज है। मगर यह शिक्षावाले लेख चार ही दिन एक कोनेमें फ़लककर समाजकी बुराइयोंके साथ एकदम ठण्डे हो जायेंगे।

शङ्कर—और बहुत मुमकिन है कि शिक्षा उसमें छिपी हुई हो। क्योंकि असलियत तो यह है कि जहाँ शिक्षा पर्देकी आड़में होती है तो पाठकोंके दिलपर ग़ज़ब ही ढाती है। खुली हुई सूरतका मज़ा और है; घूँघटमें मज़ा और है। जहाँ शिक्षा पर्देसे बाहर आकर खुल्लमखुल्ला पाठकोंसे बातें करती है, लेख भोण्डा और बेअसर हो जाता है।

शंकर—सही है। अगर यही हाल रहा तो हमारे साहित्यकी फुलवाड़ीमें नीम, चिरायता और गुरखुलके सिवा और कुछ न उगने पायेगा। वाह! वाह! भैंसके आगे बीन बजाये और भैंस बैठी पगुराय।' सम्पादकजी सो रहे हैं क्या? राम! राम! सम्पादकजी! सम्पादकजी!! पीनकमें हैं क्या आप?

सम्पादक—(घबड़ाकर) नहीं! नहीं! मैं सोच रहा था कि जिस पत्रमें मेरा लौटाला हुआ लेख छपा है, उसकी मैं ऐसी कड़ी समालोचना कर डालूँ कि उसकी हुलिया बिगड़ जाय। इस बातपर सब हँस पड़े।

शंकर—वाह! वाह! क्या ख्यालात हैं। आपके। 'कोढ़ी चमकावे थूकसे।'

लालमोहन—यह तो वही हुआ कि किसीने किसीसे कहा कि लालाने तुम्हारी थाली ले जाकर उसमें गोश्त खाया है। वह बिगड़के बोला कि अच्छा, उसकी थाली लाकर मैं उसमें मैला खाऊँगा। बदला ले तो यों ले।

सम्पादक—नहीं जी, मैं इसका बिना बदला लिये नहीं मानूँगा अगर उस लेखककी कोई भी किताब मेरे हाथ लगी तो मैं अपनी जली-कटी समालोचनाओंसे उस किताबकी धज्जियोंकी धज्जियां उड़ा दूँगा।

शंकर—अहाहाहा! आपकी समालोचनाएँ दुश्मनीका बदला लेनेकी मशीन हैं बल्कि यों कहिये कि अच्छा बच्चा, आना गोला-गंजमें तो बताऊँगा।

शंकर—और फिर आपके कहनेसे कहीं हंस बगुला हो जायेगा या कौआ सफेद? यही तो ख्याल आपको बरबाद किये हुये है कि आप समझते हैं, पबलिकका नकेल हम लोगोंके हाथमें है, जिधर चाहें उसको मोड़ दें। अजी हजरत "मुश्क आनस्तकी खुद बिगोयद न कि अत्तार बिगोयद" अगर उसमें कुछ असलियत होगी तो आप जैसे लोगोंकी समालोचनाओंको रौंदता हुआ साहित्यकी चोटीपर चढ़ता ही जायेगा और वहां चमकर तमाम पबलिकको पतिंगोंकी तरह खींच लायेगा।

सम्पादक—कदापि नहीं, स्त्रियोंके हावभावका लेखक कभी ऐसा हौसला कर ही नहीं सकता। स्त्रियोंके मुँह देखनेवालोंमें भला इतना साहस कहीं हो सकता है।

लालमोहन—स्त्रियाँ ही तो संसारका रहस्य और साहित्यका प्राण हैं सम्पादकजी ?

शंकर—और अगर आप ही बड़े शेर भालूके मुँह ताकते रहे हैं तो आप ही कुछ चमत्कार दिखाइये।

सम्पादक—क्या कहूँ, खड़ी बोलीमें रस ही नहीं आ सकता, नहीं तो मैं कुछ करके दिखा देता।

लालमोहन—छन्द रचनेवाली किताबके सहारे कविताईका दम भरते हैं तो उसमें रस भला कहाँसे आ सकता है ?

सम्पादक—नहीं जी, खड़ी बोलीकी मात्राएँ बड़ी होती हैं इसलिये भाषामें मिठास और सुन्दरता आ ही नहीं सकती।

शंकर—'नाच न जाने आँगन टेढ़ा।' जब मात्राओंके ऊपर आपकी कविता निर्भर है, तब फिर क्यों नहीं उसमेंसे 'मेंव मेंव' की आवाज निकले। अव्वल तो कविताई ईवरकी देन है। उसके बाद जब दिमाग़में ख्यालात, पहलुमें दिल और दिलमें जोश ज़बानमें रस और क़लममें ताकत हो तब तो जैसे जोश व भाव दिलमें हैं, वही जोश व भाव शब्दोंमें होंगे और उन शब्दोंकी खुद आवाज़ भी वही जोश और भाव पाठकोंके दिलमें उभाड़ेंगी। मगर यहाँ तो करना चाहते हैं वीर रसकी बातें और जबानसे निकलता है, 'मेंव मेंव'! पूछिये क्यों! तो जवाब मिलता है कि मात्रा बड़ी है। छिः। अरे अपना मुँह पीटिये। भाषाको फजूल दोष क्यों देते हैं ?

लालमोहन—पहले भाषाको तो अपने वशमें कीजिये।

लफ्ज़ोंकी ताकतको आज़माइये, फिर देखिये, किन लफ्ज़ोंके साथ इनकी ताकत बढ़ती है और किनके साथ घटती है, गो एक मानीके कई लफ्ज़ होते हैं। मगर-ख़ास-ख़ास भावनाओंके लिए लफ्ज़ भी अलग-अलग हैं। जब इन बातोंका आपको पूरा ज्ञान हो जायगा और अगर आपमें कविताईकी शक्ति है तब न मात्रा गिननेकी ज़रूरत होगी न शेर बैठानेमें घंटों सर मारनेकी तकलीफ होगी। जिस वक्त दिलमें जैसा भाव उठेगा, शायरी आपसे आप उसी ज़ोरोंके साथ निकलेगी, भाषा चाहे खड़ी हो या औन्धी, अगर वह अपने वशमें है और दिलमें कविताईकी शक्ति है तो जो रस चाहिये, वह लीजिये।

'खुदासे तुम दिल मिलाओ अपना,
ज़बांको फिर मिलाओ दिलसे।
तो देख लोगे कि पुर असर है,
ज़बांसे जो निकल रहा है।।'

सम्पादक—वाह! वाह! कविताईमें ऊंचे भाव चाहिये भाषासे क्या सरोकार? जब भाव मामूली होंगे तो भाषा उसमें भला क्या मज़ा पैदा कर सकती है?

शङ्कर—अजी सम्पादकजी! सादे और मामूली ख़यालात भी सादी हो ज़बानमें वह ग़ज़ब ढाते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता, शर्त यह कि कहनेवाला चाहिये। ब्रजभाषामें इतना रस क्यों है? क्योंकि उसके कवि लोग आजकलकी तरह तुकबन्द और भाषाके अज्ञानी न थे। उनके दिलमें कविताईकी शक्तियां

थीं, इसलिये जिस रङ्गमें जो कुछ कह गये, उसका मज़ाही निराला है। आजकलकी तरह अगर वह लोग भी छन्द रचनेकी किताबके सहारे तुकबन्दी करते तो उस बोलीमें भी वही, छीछा-लेदर होती।

लालमोहन—अच्छा, अब कुछ मिसाल देकर आपकी आँखें खोल ही दूँ। सुनियेः—

'हाँ दिलाराने वतन धाग बिठा कर आना।
तन तना जरमने खुदबींका मिटा कर आना,
नद्दियाँ ख़ूनकी बरलिनमें बहा कर आना॥
कैसरी तख्तकी बुनियाद हिला कर आना!'

इत्यादि (चकवस्त)

देखिये, जो जोश दिलमें है, वही शब्दोंकी आवाजमें भी है। आवाज हरेक लफ़्ज़पर रुक-रुक दूसरे लफ़्ज़पर चढ़ती है, जिससे रह-रहकर दिलमें ठोकरसी लगती है और जोश भड़क उठता है।

शंकर—मात्राएँ चाहे छोटी हो या बड़ी, भला, यह कवियोंकी ज़बान पकड़ सकती है या कहनेवालेका मुँह बन्द कर सकती है या भाषाके बहावमें विघ्न-बाधा डाल सकती है?

शंकर—देखिये, एक दूसरा नमूना दिखाता हूँ। 'चकवस्त' की रामायणके एक सीनमेंसे दो चार अशार सुनाता हूँ। मज़ा तो पूरा ही पढ़नेमें है, मगर फिर भी उसका हरेक शेर अपना असर दिखाता ही है। श्रीरामजी बन जानेके लिये कौशल्यासे आज्ञा लेने

गये हैं। उस दुखियारीके दिलपर क्या गुजरती है और क्या कहती है—

'रोकर कहा ख़ामोश खड़े क्यों हो मेरी जां।
मैं जानती हूँ जिस लिये आये हो तुम यहाँ॥
सबकी खुशी यही है तो सहराको हो रवाँ।
लेकिन मैं अपने मुँहसे न हर्गिज़ कहूँगी हाँ॥
किस तरह बनमें आँखोंके तारेको भेज दूँ।
जोगी बनाके राजदुलारेको भेज दूँ॥
लेती किसी फ़क़ीरके घरमें अगर जनम।
होते न मेरी जानको सामान यह बहम॥
डसता न साँप बनके मुझे शौकतो हशम।
तुम मेरे लाल थे मुझे किस सल्तनतसे कम॥
मैं खुश हूँ फूँक दे कोई इस तख़्तो ताजको।
जब तुम्हीं नहीं तो आग लगाऊँगी राजको॥

देखिये, इसमें शब्दोंकी आवाज आहिस्ते-आहिस्ते दूसरे शब्दोंपर गिरती जाती है जिससे सुननेवालोंके दिलपर रंज और निराशा उभरती जाती है। मानीमें असर तो होता ही है, मगर जब शब्दोंकी आवाज़में भी वही असर हो तब तो क़ाबिलियत है। इसलिये कवियोंको चाहिये कि भाषाको अच्छी तरहसे अपने वशमें कर ले, जिससे ख्यालातके मरोड़के साथ भाषा भी बल खाती हुई चले। तभी भाषामें बहाव आ सकता है। नहीं तो ऊँटकी चाल तो चलेहीगी।

लालमोहन—लफ़्ज़ 'हाँ' और 'और' मामूलीसे मामूली और छोटेसे छोटे लफ्ज़ हैं; मगर देखिये, कहनेवालेकी ज़बान इनको भी कितने गज़बका ताकतवर बना देती है। उसी सीनमेंका एक शेर सुनाता हूँ—

'है किब्रियाकी शान गुज़रते हैं माहव साल।
खुद दिलसे दर्दे हिज्रका मिटता गया ख्याल।
'हाँ' कुछ दिनों तो नौहवो मातम हुआ किया॥
आखिरको रोके बैठ रहे 'और' क्या किया॥

शङ्कर—अच्छा, अब हावभाव और चुलबुलाहट देखियेः—

बोली कि चलो चलो हवा हो,
मैंने तो नहीं कहा कि चाहो।
इतराती हूँ नाज़ करती हूँ मैं,
हाँ हाँ यों ही सँवरती हूँ मैं॥
क्यों जी जोबनपर मरते हो तुम,
तिरछी चितवनपर मरते हो तुम।
घुँघरू बालोंमें हैं तुम्हें फिर,
फन्दे जालोंमें हैं तुम्हें फिर॥
हाँ फूल हैं गाल फिर तुम्हें क्या,
है लालसे लाल फिर तुम्हें क्या।
लचकाऊँ कमर तो क्या करो तुम,
चमकाऊँ नज़र तो क्या करो तुम॥

मैं नाज़ न कम करूँगी हाँ हाँ,
घुँघरू छम छम करूँगी हाँ हाँ।
आख़िर मरते हो सच बताओ,
क्योंकर मरते हो मर तो जाओ॥
देखो देखो नज़र कहाँ है,
क्या ढूँढ़ते हो कमर कहाँ है।
सिसकी भरनेसे कुछ न होगा,
उफ़! उफ़! करनेसे कुछ न होगा॥
क्योंकर हाँ फिर तो हाथ जोड़ो,
आँचलकी नहीं बदी है छोड़ो।

(तराने शौकसे)

देखिये, गो ख़्यालात कुछ नहीं हैं, मगर शब्दोंपर चिकनाहट इस कदर ज्यादा है कि ज़बान उनपर तेजीसे फिसलती है, जिससे दिलमें गुरगुरी उठती है और चुलबुलाहटका असर पैदा होता है।

सम्पादक—मगर इससे क्या? भिन्नतुकान्तकी जो हमारी कविताई होती है, उसकी बात ही और है। भाषामें जो रस न आवे तो मैं क्या करूं?

शंकर—(दिलमें) खूब! 'घोड़ा परखें भवन चमार।' जन्मभर देहातोंमें भाड़ झोंका और चले हैं 'भिन्नतुकान्त कविताका दम भरने।

लालमोहन—यह भी कुछ मालूम है कि भिन्नतुकान्त कविता कहते किसे हैं ? कहांपर और कब इसका इस्तेमाल किया जाता है ? कि खाहमखाह हर जगह चार लाइनकी भी कविता है तो वह भी भिन्नतुकान्त ! अजीब अन्धेर मचा रखा है !

मालमोहन—लम्बी-चौड़ी कविताओंमें लोग भिन्नतुकान्त इस्तेमाल करते हैं, ताकि पाठकोंका मन उकताने न पाये। क्योंकि अगर उनको तुकान्त किया जाय तो भाषाकी धारा हरएक तुकपर लुढ़क जाती है और वहीं पढ़ने वालोंकी आवाज भी उखड़ जाती है। ज्यादा देर जो यही सिलसिला जारी रहे तो पढ़ते-पढ़ते तबीयतमें उलझनसी पैदा हो जाती है।

सम्पादक—वाह ! वाह ! अगर ऐसा होता तो भिन्नतुकान्त कवितामें लोग नाटक क्यों लिखते ? क्या उनमें दो-चार लाइनकी छोटी वार्ताएँ (*Speeches*) नहीं होतीं ?

लाल०—हां, होती हैं और वह 'भिन्नतुकान्त' कवितामें लिखी जाती हैं। इसलिये कि उन वार्ताओंमें स्वभाविक बोल-चालका मजा आये। बनावटकी बू न आये और यह तभी मुमकिन है, जब भाषाकी धार किसी तुकपर टूटने न पाये और उसमें एक कुदरती बहाव हो। मगर अभी गद्यमें तो लोग यह बहाव कायम रखना जानते नहीं, पद्यमें क्या अपना सर इसे कायम रखें ?

इतनेमें एक आदमी हांफता हुआ बेतहाशा कमरेके भीतर घुस आया, सब लोग घबड़ाके चौंक पड़े।

आनेवाला—हाय ! सर्वनाश हो गया। वकील साहब ! हाय लुट गया !

सम्पादक—यह वकीलका मकान नहीं है।

आनेवाला—क्या ! हम तो बाहर साइनबोर्ड देखकर समझे कि यह वकीलका मकान है। हाय ! अब क्या करें ?

सम्पादक—यहांसे एक मासिक पत्रिका निकलती है। उसीका साइनबोर्ड है।

आनेवाला—क्या ? आप सम्पादक······सम्पादक··यह सम्पादक तो नहीं, जो मुझे रेलपर मिले थे ?

सम्पादक—कौन हैं आप ? अरे वही उपदेशकजी भड़ामसिंह शर्मा ?

उपदेशक—हां, हां मैं वही हूँ। परन्तु सम्पादकजी मुझे जल्दी किसी वकीलके पास ले चलिये। मेरी जो भाग गई।

शङ्कर—कैसे भाग गई भाई ? जरा बताओ तो।

उपदेशक—इलाहाबादमें मैं अपनी देवीजीके साथ रात गाड़ीमें सवार हुआ। आज सुबह ही हमलोग यहां उतरे। देवीजी जिद कर रही थीं कि हमको बन्द गाड़ीमें ले चलो, मगर मैंने एक न माना। हम दोनों पैदल टहलते हुए आ रहे थे कि इतनेमें एक एक्का बगलसे निकला। उसपर एक पछैयां चढ़ा हुआ था।

उसको देखते ही यकायक देवीजी 'वकीलजी वकीलजी !' पुकारती हुईं उस एक्केके पीछे दौड़ीं। एक्का रुक गया। वह दनसे उसपर चढ़ गईं और एक्का गायब हो गया। पता ही नहीं चलता, कहां चला गया। लोगोंने मुझसे कहा कि तुम भी दौड़ो, किसी वकीलके पास।'

लालमोहन—यह कहिये, परदेवाली देवीजी मैदानकी हवा खाते ही हवा हो गईं।

वृजभूषण जो अबतक चुपचाप बैठा हुआ था, बड़ा मुस्तैदीके साथ उठकर उपदेशकके पास आया और कहने लगा—उपदेशकजी, आप वकीलकी फिक्र न कीजिये। वकील तो मुकद्दमा चौपट होनेपर किये जाते हैं। ईश्वरकी दुआसे मैं अर्जीनवीसी करता हूं। एक रुपया लिखाईका निकालिये। अठन्नी टिकटके लिये और एक पैसा फार्मके लिये। मैं तुरन्त आपका इस्तग़ासा हसब दफा ४९८ ताजीरात हिन्द लिखे देता हूँ। अभी दस नहीं बजे हैं। चलिये कचहरीमें सवालखानीके वक्त उसे आप मैजिस्ट्रेट साहबके यहाँ दे दीजिये। उसके बाद आपका बयान होगा। अगर उससे आपका मुकद्दमा सच्चा मालूम होगा, तारीख मिलेगी और मुलजिम तलब कर लिया जायगा (शङ्कर और लालमोहनसे) अजी जनाब, आप लोग बड़े-बड़े लेखक बनते हैं। हजारों सफे लिख डाले होंगे मगर फायदा क्या उठाया ? और यहाँ देखिये, चार लाइन घसीटते हैं और उनसे रुपया नकद करते हैं। जो पेट जला करे तो दिमाग

क्या खाक काम कर सकता है ? आप लोग समझते हैं कि इसमें बड़ा नाम है। घबड़ाइये नहीं, बरसात खतम होने दीजिये; मेढ़कों-की आवाज सब बन्द हो जायगी। सभी लेखक, कवि और सम्पादक होंगे तो दाम खर्च करके पढ़नेवाले कहाँ आयंगे ?

बारहवाँ परिच्छेद

'क्या कहिये अपने मर्जके अब इसबे हाल की।
सरजन रकीब और दवा अस्पताल की॥'

पाठक थोड़ीसी तकलीफ और कीजिये। जरा कचहरी लपक चलिये। देखिये, उपदेशकजीका मुकद्दमा पेश है और श्रीमान् भड़ामसिंह शर्माका बयान हो रहा है।

मैजिस्ट्रेट—तुम्हारा नाम क्या है?

उपदेशक—भड़ामसिंह शर्मा।

मैजिस्ट्रेट—सिंह और शर्मा दोनों? उँह···अंबापका नाम?

उपदेशक—बापका नाम क्या होगा?

मैजिस्ट्रेट—हम नहीं जानते। जितना हम पूँछें उसका ठीक-ठीक जवाब दो। अच्छा, लिखे देता हूं। तेरा कोई बाप नहीं है।

उपदेशक—नहीं है। है, वह परमपिता जगदीश्वर!

मैजिस्ट्रेट—गदहा कहींका, बेवकूफ। यहाँ तेरा बाप कौन है?

उपदेशक—यहाँ तो सरकार हजूर ही माई-बाप हैं।

मैजिस्ट्रेट—बापका नाम याद नहीं है। अच्छा, आगे चल। पेशा बोल।

उपदेशक—उपदेशकी।

मैजिस्ट्रेट—यानी ईश्वरकी तरफ लगे हुए ख्यालातको डावाँ-डोल करना। गिरते हुएको और ढकेल देना। बिना लड़ाईके लड़ाई खड़ी करना।

उपदेशक—नहीं हजूर! धर्मका प्रचार करना। लोगोंको बताना कि कौन-सा धर्म सबसे अच्छा है। इसलिये कौनसा धर्म उनको ग्रहण करना चाहिये।

मैजिस्ट्रेट—तो यह कहो कि उपदेशकी नहीं, दल्लाली करते हो। उपदेशकोंका सच पूछो तो काम यह है कि लोगोंके दिलोंमें ईश्वरकी भक्ति पैदा करें। मरते हुएको बचाएँ। गिरते हुएको सम्हालें। भूले-भटकोंको सीधा रास्ता बताएँ। घबड़ाये हुएको तसल्ली दें। मगर ईश्वर-की तरफ लगे हुए ख्यालातको कभी डाँवाडोल नहीं करना चाहिये।

सरिश्तेदार—जी हुजूर। बहुत सही कहा हुजूरने। मगर आजकल तो हुजूर हाल ही और है। जितने ही ज्यादा उपदेशक होते जाते हैं, उतना ही ज्यादा धर्म बेचारेकी मिट्टी पलीद हुई जाती है। लोगोंके दिलोंसे ईश्वरकी भक्ति गायब होती जाती है। एक अपनी तरफ खींचता है, दूसरा अपनी तरफ। इस ऐंचा-तानीमें सुननेवाला कहींका नहीं होता। घबड़ाकर अपने पहले

ख्यालातोंसे भी हाथ धो बैठता है। वह फिर अपनी शान्ति ईश्वरको एकदम भुला देनेहीमें देखता है और इस तरह उसके दिलमें नास्तिकपन पैदा हो जाता है।

मैजिस्ट्रेट—(उपदेशकसे) तुम ईश्वरका ध्यान खास तौरसे कब करते हो ?

उपदेशक—इसका कोई ठीक समय नहीं है। किया किया न किया। क्योंकि हम लोगोंको काम बहुत रहता है। दौरोंपर भी समय-कुसमय जाना पड़ता है। इसलिये अगर हम लोग इसके पीछे रहें तो काम कैसे चले ?

मैजिस्ट्रेट—लीजिये, चिराग तले अन्धेरा ! खुद तो दिलमें ईश्वरकी भक्ति है ही नहीं। दूसरोंके दिलोंमें भला यह क्या भक्ति पैदा कर सकते हैं ? न जाने ऐसे लोगोंपर इतना भारी काम कैसे छोड़ा जाता है, जिसके ऊपर धर्मकी नेकनामी और बदनामी मुनहसिर है। चुप, खबरदार ! जो कुछ बोला। तेरी औरत वकीलजी भगा ले गया है ?

उपदेशक—हाँ, हुजूर। और—

मैजिस्ट्रेट—जितना हम पूछें उतना ही जवाब दे, अपना किस्सा अपने घर रख। अपनी औरतका नाम बता सकते हो। जबानसे न सही, लिखकर तो बता सकते हो ?

उपदेशक—श्रीमती चतुर्वेद भण्डारा देवी।

मैजिस्ट्रेट—अबे बेवकूफ ! यह कौनसा नाम है।

उपदेशक—वह हमने नाम रखा है धर्मके नियमोंपर।

मैजिस्ट्रेट—अबे गदहे, जो उसके बापने नाम रखा है, वह बता।

उपदेशक—वह नहीं मालूम है।

मैजिस्ट्रेट—अपनी औरतके बापका नाम जानते हो कि वह भी नहीं जानते ?

उपदेशक—वह भी नहीं जानता।

मैजिस्ट्रेट—तुम अपनी औरतको दस पांच औरतोंके बीचमें पहचान लोगे ?

उपदेशक—नहीं। श्रीमतीजीका मुँह—

मैजिस्ट्रेट—चुप। झूठा मुकदमा चलाने आया है, कम्बख्त ?

सरिश्तेदार—इसकी जोरू वह होती, तब तो यह पहचानता ?

उपदेशक—नहीं नहीं, उससे हमारी शादी हुई है। कल ही रात तो। वह हमारी स्त्री अवश्य हुई।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा, बोल, शादीका सबूत बता किस पण्डितने तेरी शादी कराई है ?

उपदेशक—पण्डित कोई नहीं था। मैंने ही पण्डितका काम किया था।

मैजिस्ट्रेट—नाई कौन था ?

उपदेशक—कोई नाई नहीं था। मगर—

मैजिस्ट्रेट—चुप। तेरे साथ बारातमें कौन-कौन आदमी गये थे ?

उपदेशक—कोई नहीं।

मैजिस्ट्रेट—बाजा-बाजा बजा था ?

उपदेशक—मैंने हां खाली शंख बजाया था ?

मैजिस्ट्रेट—नाच-गान हुआ था ?

उपदेशक—आर्य! नाच गान कराके क्या मैं इस विवाहको अशुद्ध कराता ?

मैजिस्ट्रेट—कोई है इसका कान मलो। झूठा, दगाबाज, बेईमान कहींका। सीधी तरह जवाब नहीं दिया जाता। ऐसी शादी 'मेन' और 'ट्रावेलियन' साहबकी रायके मुताबिक नहीं हो सकती।

उपदेशक—आर्य! आर्य! यह अन्धेर! "मेन" और "ट्रावेलियन" हैं कौन लोग ? इनकी क्या आवश्यकता है, हमारे मामलेमें राय देनेके लिये ?

मैजिस्ट्रेट—चुप! चुप!! चुप!!!

उपदेशक—यह लोग वहां कहां थे ? मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ कि दोनोंमेंसे वहां कोई भी नहीं था। इनकी राय सरासर झूठ। एकदम ग़लत।

मैजिस्ट्रेट—बस, चुप, नहीं तो अभी कान पकड़के उठाना बैठाना पड़ेगा। चूंकि औरत भगा ले जानेके मुकदमेमें शादीका साबित होना जरूरी है और यहाँ मुद्दईके खुद बयानसे जाहिर है कि इसके पास कोई शादीका सबूत नहीं है। इसलिये दावा खारिज!

उपदेशक—आयँ यह कैसे ? यह भी शादी अशुद्ध हो गई।

मैजिस्ट्रेट—निकाल दो इसको बाहर।

उपदेशक—(बाहर आकर) अशुद्ध शादी करो तो यह हालत और सही शादी करो तो यह हालत। हो न हो 'मेन' और 'ट्रावेलियन' से कुछ सरोकार वकीलजीका अवश्य है। वर्ना उन लोगोंको हमारे मामलेमें झूठी राय देनेकी क्या आवश्यकता थी ?

तमाशा देखनेवाले—अरे क्या हुआ भाई ?

उपदेशक—हमें मालूम हो गया कि मैजिस्ट्रेट 'मेन' और 'ट्रावेलियन' से मिल गये। अब क्या करें ?

तमाशा देखनेवाले—फिर दूसरी शादी।

उपदेशक—जो शादी करते हैं, वह अशुद्ध हो जाती है।

तमाशाई—तब तो शादी करनेका सिलसिला जरूर जारी रखो। कै दफे ग़लत होगी। आखिर कभी न कभी तो सही होगी। हा ! हा ! हा !

"देख ली सैर हरम हजरते वायज़ रुखसत।
आपका काबा मेरा मुतकदा आबाद रहे॥"

समाप्त